क्षणभंगुर
जीवन
प्रवचनामृत :
परमपूज्य आचार्य 108 श्री ज्ञानसागरजी महाराज

एक नजर : जैन मुनि शाकाहार प्रवर्तक आचार्य श्री ज्ञानसागर जी महाराज

अनासक्त, अपरिग्रही और सतत् ज्ञानाराधक परम पूज्य शाकाहार प्रवर्तक, सराकोद्धारक आचार्य श्री ज्ञानसागर जी मुनिराज भारत की गरिमामयी श्रमण–संस्कृति संत–परम्परा और समाज सुधारक का जीवन्त प्रतीक हैं। आचार्य श्री के प्रयासों से शाकाहार के प्रचार को एक नयी चमक मिली है।

सन् 1957 की वैशाख शुक्ला द्वितीया को मुरैना (म०प्र०) में जन्में उमेश कुमार की जीवन यात्रा आत्म बोध के साथ प्रारम्भ होकर सन् 1976 में क्षुल्लक श्री गुणसागर के रूप में प्रतिफलित हुई। फिर बारह वर्ष पश्चात् 31 मार्च 1988 को आचार्य सुमतिसागर जी महाराज से जैन मुनि की दीक्षा प्राप्त कर श्री ज्ञानसागर जी महाराज के नाम से प्रख्यात हुए। समाज कल्याण के लिए वह सागर (म०प्र०) से निकल कर मेरठ, दिल्ली, बड़ागाँव, बड़ौत, गाजियाबाद, मुजफ्फरनगर, सहारनपुर, शाहपुर (उ०प्र०) सहित उत्तर भारत के पश्चात् गया, रांची, पेटरवार, पुरूलिया, सराक क्षेत्र तड़ाई तथा तीर्थराज सम्मेदशिखर जी सहित पूर्वी भारत में बिहार, बंगाल, झारखण्ड, उड़ीसा में प्रवास किया। सराक जाति का उद्धार कर ऐतिहासिक कार्य किया है। आचार्य श्री ने उत्तर तथा पूर्वी भारत के बाद तिजारा, अलवर, भरतपुर, मथुरा, केकड़ी, आगरा, महावीरजी, रेवाड़ी गुड़गाँव, (हरियाणा) में शाकाहार को एक नयी दिशा प्रदान की।

आचार्य श्री की ज्ञानगंगा कभी भी पंथों, जातियों या सम्प्रदायों की परिधि में सिमटकर नहीं बहती। वह धारा तो बिना किसी भेद–भाव के हर जाति, धर्म और आस्था वाले लोगों के बीच करूणाधारा के रूप में प्रवाहित होकर अहिंसा और विश्व शांति के अंकुर उगाती है। संगोष्ठियों, सम्मेलनों, प्रतिभा सम्मान से उपाध्याय श्री ने एक उजाले की नयी किरण इस धुधले होते युग में पैदा की है।

क्षणभंगुर जीवन

प्रवचन :

परम पूज्य आचार्य 108 श्री ज्ञानसागर जी महाराज

सम्पादन :

डॉ. श्रीमती कृष्णा जैन, ग्वालियर

राजेश जैन, एडवोकेट, सरधना (मेरठ)

प्रकाशक :

प्राच्य श्रमण भारती, मुजफ्फरनगर

नववर्ष 2015 आगमन के उपलक्ष्य में प्रकाशित

© प्राच्य श्रमण भारती 2014

पुण्यार्जक : श्री अजय कुमार प्रदीप कुमार जैन
मै. फिट-फाईन टी-शर्ट सुभाष रोड़,
गांधी नगर दिल्ली

आठ संस्करण : सन् 2014 तक कुल 22000 प्रतियाँ
नवम संस्करण : दिसम्बर 2014, 2100 प्रतियाँ

मूल्य : 40.00 रूपये मात्र (पुनः प्रकाशन हेतु)

पुस्तक प्राप्ति स्थल :

- **प्राच्य श्रमण भारती**
  12/ए, निकट जैन मन्दिर
  प्रेमपुरी, मुजफरनगर - 251001 (उ० प्र०)
  फोन : 0131-2450228, 2408901

- **श्रुत संवर्द्धन संस्थान**
  प्रथम तल, 247 दिल्ली रोड़,
  मेरठ — 250 002, फोन : 0121– 2528704, 9358419857

- **आचार्य शान्ति सागर "छाणी" स्मृति ग्रंथमाला**
  बुढ़ाना (मुजफ्फरनगर)

- **संस्कृति संरक्षण संस्थान**
  32/3C, कान्तिनगर एक्सटेंशन, दिल्ली-51
  फोन : 011 - 9811350254, 9312243845

मुद्रक :
अनुपम प्रिंटर्स

आचार्य शान्तिसागरजी महाराज (छाणी) और उनकी परम्परा

बाल ब्रह्मचारी, प्रशान्त मूर्ति आचार्य 108 श्री शान्तिसागर जी महाराज (छाणी) "उत्तर"

जन्म तिथि	-	कार्तिक बदी 11 सं० - 1945 (सन् 1888)
जन्म स्थान	-	ग्राम-छाणी, जिला - उदयपुर (राजस्थान)
जन्म नाम	-	श्री केवलदास जैन
पिता का नाम	-	श्री भागचन्द जी जैन
माता का नाम	-	श्रीमती माणिकबाई
क्षुल्लक दीक्षा	-	सन् 1922 (वि० सं० 1979)
स्थान	-	गढ़ी, जिला-बाँसवाड़ा (राजस्थान)
मुनि दीक्षा	-	भाद्र शुक्ला 14 संवत् 1980 (सन् 1923)
स्थान	-	सागवाड़ा, जिला-डूंगरपुर (राजस्थान)
आचार्य पद	-	सं० 1983 सन् 1926
स्थान	-	गिरिडीह (झारखण्ड)
समाधिमरण	-	ज्येष्ठ बदी 10 सं० - 2001 - 17 मई 1944,
स्थान	-	सागवाड़ा (राजस्थान)

परम पूज्य आचार्य 108 श्री सूर्यसागर जी महाराज

जन्म तिथि	-	कार्तिक शुक्ला 9 सं० - 1940 (सन् 1883)
जन्म स्थान	-	प्रेमसर, जिला - ग्वालियर (म०प्र०)
जन्म नाम	-	श्री हजारीमल जी पोरवाल
पिता का नाम	-	श्री हीरालाल जैन
माता का नाम	-	श्रीमती गेंदाबाई
ऐलक दीक्षा	-	आसोज शुक्ला 6 सं० - 1981 (सन् 1924) (आ० शान्तिसागर जी से)
स्थान	-	इन्दौर (मध्य प्रदेश)
मुनि दीक्षा	-	मंगसिर बदी 11 सं० 1981 (सन् 1924) 51 दिन पश्चात् आचार्य शान्तिसागर जी (छाणी) से
स्थान	-	हाटपीपल्या, जिला - देवास (म०प्र०)
आचार्य पद	-	कार्तिक शुक्ला 9 सं० 1985 (सन् 1928),
स्थान	-	कोडरमा (झारखण्ड)
समाधिमरण	-	श्रावण कृष्णा 8 सं० 2009 (14 जुलाई 1952)
स्थान	-	डालमिया नगर (झारखण्ड)
साहित्य क्षेत्र में	-	33 ग्रन्थों की रचना की।

परम पूज्य आचार्य 108 श्री विजयसागर जी महाराज

जन्म तिथि	-	माघ सुदी 8 सं० 1938 (सन् 1881), गुरुवार
जन्म स्थान	-	सिरोली, जिला ग्वालियर (मध्य प्रदेश)
जन्म नाम	-	श्री चोखेलाल जी जैन
पिता का नाम	-	श्री मानिकचन्द जी जैन
माता का नाम	-	श्रीमती लक्ष्मीबाई
क्षुल्लक दीक्षा	-	इटावा (उत्तर प्रदेश)
ऐलक दीक्षा	-	मथुरा (उत्तर प्रदेश)
मुनि दीक्षा	-	सं० 2000 (सन् 1943) आचार्य श्री सूर्यसागर जी से
स्थान	-	मारोठ जि० नागौर, (राजस्थान)
आचार्यपद	-	लश्कर, ग्वालियर (म.प्र.)
समाधिमरण	-	सं० 2019 दिनांक 20 दिसम्बर 1962
स्थान	-	मुरार, जिला - ग्वालियर (मध्य प्रदेश)

परम पूज्य आचार्य 108 श्री विमलसागर जी महाराज (भिण्ड वाले)

जन्म तिथि - पौष शुक्ला 2 सं० 1948 (सन् 1891)
जन्म स्थान - ग्राम मोहना, जिला-ग्वालियर (मध्य प्रदेश)
जन्म नाम - श्री किशोरीलाल जी जैन
पिता का नाम - श्री भीकमचन्द जी जैन
माता का नाम - श्रीमती मथुरा देवी जैन
क्षुल्लक दीक्षा - सं० 1997 (सन् 1941) आ० विजयसागर जी से
स्थान - ग्राम-पाटन, जिला - झालावाड़ (राजस्थान)
मुनि दीक्षा - सं० 2000 (सन् 1943) आ० विजयसागर जी से
स्थान - कोटा (राजस्थान)
आचार्यपद - सं० 2030 (सन् 1973), स्थान-हाड़ोती (राजस्थान)
समाधिमरण - चैत्र शुक्ला 11 सं० - 2030, 13 अप्रैल 1973
स्थान - सांगोद, जिला - कोटा (राजस्थान)

मासोपवासी, समाधि सम्राट परम पूज्य आचार्य 108 श्री सुमतिसागर जी महाराज

जन्म तिथि - आसोज शुक्ला 4 सं० 1974, (सन् 1917)
जन्म स्थान - ग्राम - श्यामपुरा, जिला - मुरैना (मध्य प्रदेश)
जन्म नाम - श्री नत्थीलाल जैन
पिता का नाम - श्री छिद्दूलाल जैन
माता का नाम - श्रीमती चिरोंजा देवी जैन
ऐलक दीक्षा - चैत्र शुक्ला 13 सं० 2025, (सन् 1968)
स्थान - रेवाड़ी (हरियाणा) आ० विमलसागर जी से
ऐलक नाम - श्री वीरसागर जी महाराज
मुनि दीक्षा - अगहन वदी 12 सं० 2025, (सन् 1968)
स्थान - गाजियाबाद (उत्तर प्रदेश)
आचार्य पद - ज्येष्ठ सुदी 5, वि० सं० 2030, 13 अप्रैल सन् 1973
स्थान - मुरैना (मध्य प्रदेश)
आ० विमलसागर जी (भिण्ड वाले) महाराज से
समाधिमरण - क्वार बदी 13 सं० 2051 दि० 3 अक्टूबर 1994
स्थान - श्री सिद्धक्षेत्र सोनागिर जी, जिला दतिया (मध्य प्रदेश)

सराकोद्धारक परम पूज्य उपाध्याय 108 श्री ज्ञानसागर जी महाराज

जन्म तिथि - वैशाख शुक्ला 2 सं० 2014, 1 मई सन् 1957
जन्म स्थान - मुरैना (मध्य प्रदेश)
जन्म नाम - श्री उमेश कुमार जी जैन
पिता का नाम - श्री शांतिलाल जी जैन
माता का नाम - श्रीमती अशर्फी देवी जैन
ब्रह्मचर्य व्रत - सं० 2031, सन् 1974
क्षुल्लक दीक्षा - सं० 2033, (5नव० 1976) आचार्य श्री सुमतिसागर जी महाराज से
स्थान - श्री सिद्धक्षेत्र सोनागिर जी, जिला दतिया (मध्य प्रदेश)
क्षु० दीक्षो० नाम - क्षु० 105 श्री गुणसागर जी महाराज
मुनि दीक्षा - चैत्र सुदी 13 सं० 2045, महावीर जयन्ती, 31 मार्च 1988
स्थान - श्री सिद्धक्षेत्र सोनागिर जी, जिला दतिया (मध्य प्रदेश)
मुनि दीक्षो० नाम - मुनि श्री 108 ज्ञानसागर जी महाराज
दीक्षा गुरु - आचार्य श्री 108 सुमतिसागर जी महाराज
उपाध्याय पद - 30 जनवरी 1989, सरधना, जिला मेरठ,(उ०प्र०)
षष्टम आचार्य पद - 27 मई 2013, अतिशय क्षेत्र बड़ागांव, (उ०प्र०)

उमेश से आचार्य मुनि श्री 108 ज्ञानसागर सफरनामा एक अनेकान्तिक साधक का

एकान्त, एकाग्र और संयमी जीवन की विलक्षण मानवीय प्रतीति बन कर एक संकल्पशील साधक के रूप में **आचार्य श्री 108 ज्ञानसागर जी महाराज** जब लोक जीवन में अवतरित हुए तो यह धरती उद्भासित हो गयी उनकी तपस्या की प्रभा और त्याग की क्रान्ति से। त्याग, तितिक्षा और वैराग्य की सांस्कृतिक धरोहर के धनी तीर्थंकरों की श्रृंखला को पल्लवित और पुष्पित करती दिगम्बर मुनि परम्परा की एक अत्यन्त महत्वपूर्ण और प्रभावशाली कड़ी के रूप में पूज्य आचार्य श्री ने अपने आभामण्डल से समग्र मानवीय चेतना को एक अभिनव संदृष्टि दी है और संवाद की नई वर्णमाला की रचना करते हुए उन मानवीय आख्यों की संस्थापना की है जिनमें एक तपस्वी के विवेक, एक योगी के संयम और युगचेतना की क्रान्तिदर्शी दृष्टि की त्रिवेणी का समवाय है। गुरुदेव की उपदेश-वाणी प्रत्येक मनुष्य को झंकृत कर सकी है क्योंकि वह अन्तः स्फूर्त है और है सहज तथा सामान्य - ऊहापोह से मुक्त, सहजग्राह्य और बोधगम्य जो मनुष्य को ज्ञान और पाण्डित्य के अहंकार से मुक्त कर मानवीय सद्भाव का पर्याय बनाने में सतत् प्रवृत्त है। यह वाणी वर्गोदय के विरुद्ध एक ऐसी वैचारिक क्रान्ति है जहाँ सभी के विकास के पूर्ण अवसर हैं, बन्धनों से मुक्ति का आह्वान है, जीवन समभाव है, जाति-समभाव है जो निरन्तर दीपित हो रही है उनकी जगकल्याणी दीप्ति से।

चम्बल के पारदर्शी नीर और उसकी गहराई ने मुरैना में वि. सं. 2014 वैशाख सुदी दोयज सन् 1957 को जन्मे बालक उमेश को पिच्छि-कमण्डलु की मैत्री के साथ अपने बचपन की उसी बुनियाद को मजबूत कराया जिसने उस निवृत्ति मार्ग का सहज, पर समर्पित पथिक बना दिया। शहर में आने वाले हर साधु-साधवी के प्रति बचपन से विकसित हुए अनुराग ने माता अशर्फीबाई और

पिता शान्तिलाल को तो हर पल सशंकित किया पर बालक उमेश का आध्यात्मिक अनुराग प्रतिक्षण, पल्लवित एवं पुष्पित होता गया और इसकी परिणति हुई सन् 1974 में उस प्रतीक्षित फैसले से, जब किशोर उमेश ने आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत को अंगीकार किया एवं दो वर्ष पश्चात् **5 नवंबर 1976 को सिद्धक्षेत्र सोनागिर जी में ब्रह्मचारी उमेश ने क्षुल्लक दीक्षा आचार्य श्री सुमतिसागर जी से ग्रहण की। उमेश से रूपान्तरित हुए क्षुल्लक गुणसागर** ने बारह वर्षों तक पं. पन्नालाल जी साहित्याचार्य, पं. लक्ष्मीकांत जी झा, पं. बलभद्र जी पाठक, पं. जीवनलाल जी अग्रिहोत्री आदि विद्वानों की सन्निधि में न्याय, व्याकरण एवं सिद्धांत के अनेक ग्रन्थ का चिन्तन-मनन भी सफलता पूर्वक किया।

क्षुल्लक गुणसागर जी की साधना यात्रा ललितपुर, सागर तथा जबलपुर में इस युग के महान सन्त **पूज्य आचार्य श्री विद्यासागर जी** की पावन सन्निधि के मध्य धवला की तत्त्व सम्पदा के सागर में अवगाहन करने में समर्पित हुई। दार्शनिक अवधारणाओं की पौर्वात्य पृष्ठभूमि की गहरी समझ के साथ-साथ क्षुल्लक जी ने पाश्चात्य चिन्तकों के विचारों को भी आत्मसात् किया एवं भाषा तथा साहित्य के ग्रन्थों का भी अध्ययन किया ताकि अपने चिन्तन का नवनीत जनमानस के सम्मुख आसान और बोधगम्य भाषा में वस्तुपरकता के साथ पहुँचाया जा सके। क्षुल्लक जी का निस्पृही, विद्यानुरागी मन जैन दर्शन के गूढ़ रहस्यों के सन्धान में रत रहा और प्रारम्भ हुआ संवाद का एक नया चरण। चाहे चंदेरी की सिद्धांत-वाचना हो या ललितपुर की न्याय-विद्या-वाचना या मुंगावली की विद्वत्संगोष्ठी या फिर खनियांधाना की सिद्धांत-वाचना, प्राचीन अवधारणाओं के नये और सरल अर्थ प्रतिपादित हुए, परिभाषित हुए और संप्रेषित भी जन-जन तक। यह तो प्रज्ञान का परिभाषित होता वह पक्ष था, जिसकी रोशनी से दिग्-दिगन्त आलोकित हो रहा था। पर दूसरा ... तीसरा ... चौथा ... न जाने और कितने पक्ष/आयाम, साथ-साथ चेतना की ऊर्ध्वगामिता के साथ जुड़ रहे थे, साधक की प्रयोग धर्मिता को

ऊर्जस्विता कर रहे थे – शायद साधक भी अनजान था अपने आत्म–पुरुषार्थी प्रक्रम से। चाहे संघस्थ मुनियों, क्षुल्लकों, ऐलकों की वैयावृत्ति का वात्सल्य पक्ष हो या तपश्चरण की कठिन और बहुआयामी साधना, क्षुल्लक गुणसागर की आत्म–शोधन–यात्रा अपनी पूर्ण तेजस्विता के साथ अग्रसर रही, अपने उत्कर्ष की तलाश में।

महावीर जयन्ती के पावन प्रसंग पर 31 मार्च 1988 को क्षुल्लक श्री ने आचार्य सुमतिसागर जी महाराज से सोनागिर सिद्धक्षेत्र (दतिया, म.प्र.) में मुनि धर्म की दीक्षा ग्रहण की और तब आविर्भाव हुआ उस युवा, क्रान्तिदृष्टा तपस्वी का; जिसे मुनि ज्ञानसागर के रूप में युग ने पहचाना और उनका गुणानुवाद किया।

साधना के निर्ग्रन्थ रूप में प्रतिष्ठित इस दिगम्बर मुनि ने जहाँ आत्म–शोधन के अनेकों प्रयोग किये, साधना के नये मानदण्ड संस्थापित किये, उदात्त चिन्तन की ऊर्जस्वी धारा को प्रवाह मानकर तत्वज्ञान को नूतन व्याख्याओं से समृद्ध किया वहीं अपनी करुणा, आत्मीयता और संवेगशीलता को जन–जन तक विस्तीर्ण कर भगवान महावीर की "सत्वेषु मैत्री" की अवधारणा को पुष्पित, पल्लवित और संवर्द्धित भी किया। मध्यप्रदेश की प्रज्ञान–स्थली सागर में मुनिराज का प्रथम चातुर्मास, तपश्चर्या की कर्मस्थली बना और यहीं से शुरू हुआ आध्यात्मिक अन्तर्यात्रा का वह अर्थ जिसने प्रत्येक कालखण्ड में नए–नए अर्थ गढ़े और संवेदनाओं की समझ को साधना की शैली में अन्तर्लीन कर तात्विक परिष्कार के नव–बिम्बों के सतरंगी इन्द्रधनुष को आध्यात्मिक क्षितिज पर प्रतिष्ठित किया।

आगामी वर्षों में मुनि ज्ञानसागर जी ने जिनवाणी के आराधकों से स्थापित किया एक सार्थक संवाद ताकि आगम ग्रन्थों में निबद्ध रहस्यो को सामान्य जनों तक बोधगम्य भाषा और शैली में सम्प्रेषित किया जा सके। सरधना,

शाहपुर, खेकड़ा, गया, रांची, अम्बिकापुर, बड़ागांव, दिल्ली, मेरठ, अलवर, तिजारा, मथुरा आदि स्थानो पर विद्वत्संगोष्ठियों के आयोजन ने बहुत से अनुत्तरित प्रश्नों के जहाँ एक ओर उत्तर खोजे वहीं दूसरी ओर शोध एवं समीक्षा के लिये नए सन्दर्भ भी परिभाषित किये गये। अनुपलब्ध ग्रन्थों के पुनर्प्रकाशन की समस्या को इस ज्ञान-पिपासु ने समझा परखा और सराहा। इस क्षेत्र में गहन अभिरूचि के कारण सर्वप्रथम बहुश्रुत श्रमण परम्परा के अनुपलब्ध प्रामाणिक शोध-ग्रन्थ, स्व. डा. नेमिचन्द्र शास्त्री द्वारा सर्जित सहित्य सम्पदा **"तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा"** (चारों भाग) के पुनर्प्रकाशन की प्रेरणा प्रदान की, जिसे सुधी श्रावकों ने अत्यल्प समयावधि में परिपूर्ण भी किया।

पुनर्प्रकाशन यह अनुष्ठान श्रमण-परम्परा पर काल के प्रभाव से पड़ी धूल को हटा कर उन रत्नों को जिनवाणी के साधकों के सम्मुख ला रहा है जो विस्मृत से हो रहे थे। पूज्य गुरूदेव की मंगल प्रेरणा से प्राच्य श्रमण भारती, मुजफ्फरनगर (उ. प्र.) के अवधान में शताधिक से अधिक ग्रन्थों का प्रकाशन/पुनर्प्रकाशन, अब तक हुआ है, जिसमें तिलोयपण्णत्ती, जैनशासन, जैनधर्म आदि अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। इस क्रम को गति देते हुए पूज्य श्री ने आधुनिक कालखण्ड़ में भुला दिये गये संतो एवं विद्वानों के कृतित्व से समाज को परिचित कराने का भी गुरूकार्य किया है, जिसकी परिणति स्वरूप आचार्य शान्तिसागर छाणी स्मृति ग्रन्थ है, जिसके प्रकाशन से एक ओर विस्मृत से हो रहे उस अत्यन्त पुरातन साधक से समाज का परिचय हुआ, जिसने सम्पूर्ण भारत में दिगम्बर श्रमण परम्परा को उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में अभिवृद्धि करने का गुरू-कार्य किया था, तो दूसरी ओर उनकी समृद्ध एवं यशस्वी शिष्या परम्परा से भी समाज को रू-बरू कराया। सुप्रसिद्ध जैन दर्शन-विद स्व. पं. महेन्द्र कुमार जैन न्यायाचार्य की स्मृति में एक विशाल स्मृति--ग्रन्थ के प्रकाशन की प्रेरणा कर मात्र एक जिनवाणी-आराधक का गुणानुवाद ही नहीं हुआ, प्रत्युत नयी पीढ़ी को उस महान साधक के अवदानों

से परिचित भी कराने का अनुष्ठान पूर्ण हुआ। इस श्रृंखला में स्व. डॉ. हीरालाल जी जैन, स्व. डॉ. ए. एन. उपाध्ये आदि विश्रुत विद्वानों के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर शोधपरक संगोष्ठियों की आयोजना के प्रस्तावों को पूज्य श्री ने एक ओर अपना मंगल आर्शीवाद दिया है, वहीं दूसरी ओर जैन पुरातत्व के गौरवशाली पन्नों पर प्राचीन भारतीय इतिहासवेत्ताओं एवं पुरातत्वविदों को कंकाली टीले, मथुरा और कुतुबमीनार के अनबूझ रहस्यों की परतों को कुरेदने और उसकी वैभव सम्पदा से वर्तमान का परिचय कराने जैसा ऐतिहासिक कार्य भी पूज्य गुरुवर के मंगल आशीर्वाद से ही संभव हो सका है।

इस तप:पूत ने वैचारिक क्रान्ति का उद्धोष किया है इस आशा और विश्वास के साथ कि आम आदमी के समीप पहुँचने के लिये उसे उसकी प्रतिदिन की समस्याओं से मुद्रि दिलाने के उपाय भी संस्तुत करने होंगे। तनावों से मुद्रि कैसे हो? व्यसन मुंद्र जीवन कैसे जिएँ? पारिवारिक सम्बन्धों में सौहार्द कैसे स्थापित हो? तथा शाकाहार को जीवन-शैली के रूप में कैसे प्रतिष्ठापित किया जाए? आदि यक्ष प्रश्नों को बुद्धिजीवियों, प्रशासकों, पत्रकारों, अधिवद्राओं, शासकीय/अर्द्धशासकीय एवं निजी क्षेत्रों के कर्मचारियों व अधिकारियों, व्यवसायियों, छात्र-छात्राओं आदि के साथ परिचर्चाओं, कार्यशालाओं, गोष्ठियों के माध्यम से उत्तरित कराने के लिए एक ओर जहाँ रचनात्मक संवाद स्थापित किया तो वहीं दूसरी ओर श्रमण संस्कृति के नियामक तत्वों एवं अस्मिता के मानदडों से जन-जन को दीक्षित कर उन्हें जैनत्व की उस जीवन शैली से भी परिचित कराया जो उनके जीवन की प्रामाणिकता को सर्वसाधारण के मध्य संस्थापित करती है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र की अनुभव सम्पन्न प्रज्ञान सम्पदा को, गुरुवर ने आपदमस्तक झिंझोड़ा है, जिसकी अद्यतन प्रस्तुति अतिशय क्षेत्र तिजारा एवं श्री महावीर जी में आयोजित जैन चिकित्सकों की विशाल संगोष्ठी थी जिसमें भारत के सुदूरवर्ती प्रदेशों से आये साधर्मी चिकित्सक बन्धुओं ने अहिंसक चिकित्सा पद्धति के लिये एक कारगर कार्ययोजना को ठोस रूप दिया और सम्पूर्ण मानवता की प्रेमपूर्ण सेवा

के लिये पूज्य श्री की सन्निधि में अपनी वचनबद्धता को रेखांकित किया, जो श्लाघ्य है, स्तुत्य है।

पूज्य श्री ने समाज को एक युगान्तर बोध कराया-भूले बिसरे सराक भाईयों को समाज की मुख्य-धारा में जोड़कर सराक भाइयों के बीच अरण्यों में चातुर्मास कर उनके साथ संवाद स्थापित किया, उनकी समस्याओं को समझा-परखा और समाज को आह्वान किया, उनको अपनाने के लिए। पूज्य श्री की प्रेरणा से सराकोत्थान का एक नया युग प्रारम्भ हुआ है जिसके कुछ प्रतीक है उस क्षेत्र में निर्मित हो रहे नए जिनालय तथा सराक केन्द्र एवं औषधालय आदि जहाँ धार्मिक तथा लौकिक शिक्षण की व्यवस्था की जा रही है।

इस आदर्श तपस्वी और महान विचारक के द्वारा धर्म के वास्तविक स्वरूप की प्रतिष्ठा एवं रूढ़ियों के समापन में सन्नद्ध सत्य की शाश्वतता के अनसंधित्सुओं/जिज्ञासुओं के प्रति, अनुराग के प्रति सभी नतमस्तक हैं। जिनवाणी के आराधकों को उनके कृतित्व के आधार पर प्रतिवर्ष श्रुतसंवर्द्धन संस्थान के अवधान में सम्मानित करने की योजना का क्रियान्वयन पूज्य आचार्य श्री के मंगल आशीर्वाद एवं प्रेरणा से सम्भव हो सका है। यह संस्थान प्रतिवर्ष श्रमण परम्परा के विभिन्न आयामों में किए गए उत्कृष्ट कार्यों के लिए पाँच वरिष्ठ जैन विद्वानों को इकतीस हजार रूपयों की राशि से सम्मानित कर रहा है। संस्थान के उक्त प्रयासों की भूरि-भूरि सराहना करते हुए बिहार के तत्कालीन राज्यपाल महामहिम श्री सुन्दरसिंह जी भण्डारी ने तिजारा में पुरस्कार समारोह के मुख्य अतिथि के रूप में अपने उद्गार व्यक्त करते हुए कहा था कि विलुप्त हो रही श्रमण परम्परा के साधकों के प्रज्ञान गुणानुवाद की आवश्यकता को इस तपोनिष्ठ साधक ने पहचान कर तीर्थंकर महावीर की देशना को गौरवमण्डित करने हेतु महायज्ञ में जो अपनी समिधा अर्पित की है वह इस देश के सांस्कृतिक इतिहास का है वह इस देश के सांस्कृतिक

इतिहास का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण एवं प्रेरक प्रसंग है, जिसके प्रति युगों-युगों तक इस देश की बौद्धिक परम्परा ऋणी रहेगी। गुणानुवाद के प्रतिष्ठापन के इस प्रक्रम को अधिक सामयिक बनाने के उद्देश्य से श्रमण परम्परा के चतुर्दिक विकास में सम्पूर्णता में किए गए अवदानों के राष्ट्रीय स्तर पर किए गए आकलन के आधार पर एक लाख रूपयों की राशि के पुरष्कार का आयोजन 21वीं सदी की सम्भवतः पहली रचनात्मक श्रमण घटना होगी। पूज्य गुरूदेव का मानना है कि प्रतिभा और संस्कार के बीजों को प्रारम्भ से ही पहचान कर संवर्द्धित किया जाना इस युग की आवश्यकता है। इस सुविचार को राँची से प्रतिभा सम्मान समारोह के माध्यम से विकसित किया गया जिसमें प्रत्येक वय के समस्त प्रतिभाशाली छात्र -छात्राओं का सम्मान, बिना किसी जाति/धर्म के भेद-भाव के किया गया। गुणानुवाद की यह यात्रा गुरूदेव के विहार से बिहार के साथ प्रत्येक ग्राम, जनपद और नगर में विहार कर रही है, और नयी पीढ़ी को विद्यालयों से विश्वविद्यालयों तक प्रेरित कर रही है, स्फूर्त कर रही है।

परम पूज्य आचार्य मुनि श्री 108 ज्ञानसागर जी महाराज वर्तमान युग के ऐसे युवा दृष्टा, क्रान्तिकारी विचारक, जीवन-सर्जक और आचारनिष्ठ दिगम्बर सन्त हैं जिनके जनकल्याणी विचार जीवन की आत्यांतिक गहराइयों, अनुभूतियों एवं साधना की अनन्त उँचाइयों तथा आगम प्रामाण्य से उद्भूत हो मानवीय चिन्तन के सहज परिष्कार में सन्नद्ध हैं। पूज्य गुरूदेव के उपदेश हमेशा जीवन-समस्याओं/सन्दर्भो की गहनतम गुत्थियों के मर्म का संस्पर्श करते हैं, जीवन को उसकी समग्रता में जानने और समझने की कला से परिचित कराते हैं। उनके साधनामय तेजस्वी जीवन को शब्दों की परिधि में बाँधना सम्भव नहीं है, हाँ, उसमें अवगाहन करने की कोमल अनुभूतियाँ अवश्य शब्दातीत हैं। उनका चिन्तन फलक देश, काल, सम्प्रदाय, जाति, धर्म-सबसे दूर, प्राणिमात्र को समाहित करता है, एक युग बोध देता है, नैतिक जीवन जीने की प्रेरणा देता है, वैश्विक मानव की अवधारणा को ठोस आधार

देता है जहाँ दूर-दूर तक कहीं भी दुरूहता नहीं है, जो है, वह है, भाव-प्रवणता, सम्प्रेषणीयता और रत्नत्रयों के उत्कर्ष से विकसित हुआ उनका प्रखर तेजोमय व्यक्तित्व, जो बन गया है करुणा, समता और अनेकान्त का एक जीवन्त दस्तावेज।

पूज्य आचार्य श्री का जीवन, क्रान्ति का श्लोक है, साधना और मुक्ति का दिव्य छन्द है तथा है मानवीय मूल्यों की वन्दना एवं जन-चेतना के सर्जनात्मक परिष्कार एवं उसके मानसिक सौन्दर्य एवं ऐश्वर्य के विकास का वह भागीरथ प्रयत्न जो स्तुत्य है, वंदनीय है और है जाति, वर्ग, सम्प्रदाय भेद से परे पूरी इन्सानी जमात की बेहतरी एवं उसके बीच "सत्वेषु मैत्री" की संस्थापना को समर्पित एक छोटा, पर बहुत स्थिर और मजबूती भरा कदम। गुरुदेव तो वीतराग साधना पथ के पथिक हैं, निरामय हैं, निर्ग्रन्थ हैं, दर्शन, ज्ञान और आचार की त्रिवेणी हैं। वे क्रान्तिदृष्टा हैं और परिष्कृत चिन्तन के विचारों के प्रणेता हैं। महाव्रतों की साधना में रचे-बसे आचार्य श्री की संवेदनाएँ मानव मन की गुत्थियों को खोलती हैं और तन्द्रा में डूबे मनुज को आपाद-मस्तक झिंझोड़ने की ताकत रखती हैं। परम पूज्य आचार्य श्री के सन्देश युगों-युगों तक सत्पूर्ण मानवता का मार्गदर्शन करें, हमारी प्रमाद-मूर्च्छा को तोड़े, हमें अन्धकार से दूर प्रकाश के उत्सव के बीच जाने का मार्ग बताते रहें, हमारी जड़ता की इति करें, हमें गतिशील बनाएँ, सभ्य, शालीन एवं सुसंस्कृत बनाते रहें, यही हमारे मंगलभाव हैं, हमारे चित्त की अभिव्यक्ति है, हमारी प्रार्थना है।

डॉ० नलिन के.शास्त्री
कुल सचिव
श्री गोविन्दसिंह विश्वविद्यालय
दिल्ली (भारत)

प्रकाशकीय

सराकोद्धारक परमपूज्य आचार्य श्री 108 ज्ञानसागर जी महाराज के आशीर्वाद एवं सद्-प्रेरणा से अद्यावधि सैकड़ों पुस्तकों का प्रकाशन हो चुका हैं, जिसका विद्यानुरागी विद्वत्समाज तथा आस्थावान श्रावक समाज ने बहुश: समादर किया है। पूज्य आचार्यश्री का ज्ञान के प्रति अनुराग है। यही कारण है कि विद्यार्थी और विद्वानों के प्रति उनका स्नेह देखा जा सकता है तथा वे स्वयं को आचार्यश्री के निकटस्थ मानते हैं। इसलिये समय-समय पर ग्रन्थों की वाचना कराकर उन्हें प्रकाशित कर समाज में समादृत किया है, जो आज स्वाध्याय का प्रमुख अंग बने हुये हैं।

डॉ० श्रीमति कृष्णा जैन प्राध्यापिका महारानी लक्ष्मीबाई कला एवं वाणिज्य स्वशासी महाविद्यालय ग्वालियर में कार्यरत हैं। आपके द्वारा पूज्य आचार्यश्री के समय-समय पर हुये अत्यन्त मार्मिक प्रवचनों को संकलित कर संपादित किया गया है जो एक अत्यन्त दुरूह कार्य है। लेकिन आपने उसे सहज ही एक पुस्तकाकार रूप में प्रस्तुत कर जीवन के यथार्थ को प्रदर्शित किया हैं। इसी प्रकार इस पुस्तक के द्वितीय संस्करण का पुनर्सम्पादन श्री राजेश जैन एड़वोकेट द्वारा किया गया है और इसमें सुधार करने का प्रयास किया गया है। एतदर्थ हम इन दोनों के आभारी हैं।

प्रस्तुत कृति "क्षण भंगुर जीवन" में जीवन की यथार्थता का निदर्शन पूज्य आचार्यश्री की वाणी द्वारा व्यक्त हुआ है जो प्रत्येक श्रावक के लिये अत्यन्त उपयोगी है।

प्रस्तुत कृति "क्षणभंगुर जीवन" जन-जन के जीवन में कल्याणकारी हो, यही मंगल कामना है।

मंत्री

प्राच्य श्रमण भारती, मुजफ्फरनगर

आमुख

आंग्ल भाषा के विख्यात कवि टामस ने लिखा था कि बहुत से रत्न अनंतकाल तक सागर की गंभीर तह में अज्ञात पड़े रह जाते हैं, बहुत से सुंदर पुष्प बनने से पहले ही मर जाते हैं, और कुछ सुरभियुक्त फूल खिलकर अदृश्य मुरझा जाते हैं। कुछ फूल ऐसे भी होते हैं, जो स्वयं तो खिलते ही हैं साथ ही जहाँ-जहाँ उनकी सुरभित सुगंध पहुँचती है, वहाँ वहाँ उनके अत्यंत सूक्ष्म बीज भी उड़कर पहुँच जाते हैं और जनकल्याण करते हैं। परमपूज्य आचार्य ज्ञानसागर जी के प्रवचनों के बारे में यह अभिव्यक्ति मेरे सामने आई। पूज्य आचार्य जी के प्रवचनों का संग्रह "क्षण भंगुर जीवन" मैंने आद्योपांत पढ़ा है। महाराज श्री के प्रवचन, उनके उच्च विचार, हृदय की विशालता, सर्वधर्मसमभाव, समाजोत्थान, और राष्ट्रीय जागरण जन मानस को सदैव आकर्षित और प्रभावित करते रहे हैं। उनके उच्च चरित्र/विचार और मधुर मुस्कान हृदय जीत लेते हैं।

उनके शब्द "देखन मे छोटे लगें, घाव करे गंभीर" की कहावत चरितार्थ करते हैं। सम्पूर्ण प्रवचन हीरे की माला है। प्रवचन की छटा तो मुग्धकारी है ही, प्रत्येक वाक्य अलग मुक्ता की तरह चमकता है। छोटे गठे सरल वाक्यों की कुछ बानगी देखिये-"सीढ़ी तो चढ़ने के लिए होती है पकड़ कर बैठ जाने के लिये नहीं" "गरम खिचड़ी में हाथ डालोगे तो जलेगा ही"। "बिच्छू का स्वभाव ही डंक मारना है," "रेत की दीवार ज्यादा नहीं चलती," "बिना पेट्रोल गाड़ी भी नहीं चलती," "स्वार्थ का कीड़ा प्राणों में समा गया है।" "संत जलते हुए चिराग हैं जिनसे दीप प्रज्जवलित होते हैं।" "पृथ्वी पर गंदा फेंके या अच्छा सब सहन करती है"। "उपचार प्रतिक्रिया का नहीं, प्रतिक्रिया के कारण का करना चाहिये।" "अंधकार जितना घना होगा, प्रकाश की आवश्यकता उतनी ही तीव्र होगी।" ये कुछ ऐसे वाक्य हैं जो मन और आत्मा तक बैठ जाते हैं और आप एक-एक वाक्य को लेकर अरसे तक उसकी बारीकी पर सोचते रह जाते हैं।

इन अमृतीय वचनों की दूसरी विशिष्टता है कि वे प्रारम्भ होते हैं एक छोटे साधारण संवाक्य से। अगला वाक्य बात को जरा आगे बढ़ाता है। फिर अगले सभी वाक्य यही कहते जाते हैं। प्रवचन का अंत किसी गहन तथ्य के निरूपण में ही होता है।

"सीता की अग्नि परीक्षा हुई तभी उनका मोह भंग हुआ।" "विपत्तियाँ जीवन की अमूल्य निधियाँ हैं।" "जिन प्रतिमा शांति के लिए टॉनिक की तरह है।" "सहिष्णुता के परिचय से ही परिवार की मर्यादायें जीवित रहती हैं।" "दुर्बलताओं की डोरियाँ हमारे संकल्प की दुर्बलता के ठीक अनुपात में मजबूत होती हैं"–"भोग के वृक्ष पर दुःख के शूल उगेंगे और रत्नत्रय के वृक्ष पर परमात्मा के फूल खिलेंगे।" "आज छात्र ने शिक्षक को खरीद लिया है। ट्यूशन पद्धति से शिक्षक का बहुमान गिरा है।"

कौन चिंतनशील व्यक्ति समाज के रोग का स्पष्ट निदान देखकर भावनाओं में नहीं खो जायेगा? सुकरात की तरह एक छोटी सी बात लेकर कड़ी दर कड़ी जोड़ आचार्य ज्ञान सागर जी हमारे चिंतन और मनोदशा को झकझोरते हैं।

परमपूज्य आचार्यश्री के प्रवचन प्रसंग को पढ़ते–पढ़ते लगने लगा कि मैं स्वयं उस स्थान, समय और उनके सान्निध्य में पहुँच गया हूँ। ये प्रवचनांश ऐसे हैं जो मुँह माँगी मुराद पूरी करते हैं। संतों की वाणी से 'जो माँगोगे वही मिलेगा' की कहावत स्वयं सिद्ध नुख्शा है। बस आस्था और अथक विश्वास की पूँजी हमारे पास होनी चाहिये।

गुरूदेव पू० आचार्य ज्ञानसागर जी के परम पावन श्री चरणों में अनंतशः नमन करते हुये ये विनयाञ्जलि सुमन समर्पित हैं।

'क्षण भंगुर जीवन' शीर्षक जीवन की शाश्वत सार्थकता की ओर इंगित करता है और हमें आत्म कल्याण के लिये प्रेरित करता है।

मेरी शुभकामनायें।

डॉ० अभय प्रकाश जैन
अध्यक्ष : श्री विमलसागर विद्यापीठ, ग्वालियर
उपाध्यक्ष : महावीर इन्टरनेशनल, ग्वालियर

अनुक्रमणिका

क्षणभंगुर जीवन

आत्मानन्द : सच्चा आनन्द

यो दर्शन-ज्ञान सुखस्वभावः, समस्त-संसार-विकार बाह्यः।
समाधिगम्यः परमात्म संज्ञः स देवदेवो हृदये ममाऽऽस्ताम्॥

इस असार संसार में, इस भौतिकता के युग में, अमानवीय वातावरण में आनन्दमय जीवन व्यतीत करना मुश्किल तो है परन्तु असंभव नहीं है। जिन व्यक्तियों या महापुरुषों का जीवन प्रकाश से अलोकित हुआ, वे जीवन इतिहास बन गए। उनके जीवन के प्रसंग संस्मरण बन गए। वे हमारे लिए आदर्शों के पद चिन्ह छोड़ गए। जिनके जीवन में प्रकाश रहा, आलोक रहा, उनका जीवन आनन्दमय हो गया। जिस जीवन में उल्लास न हो, प्रसन्नता न हो, प्रकाश न हो, वह जीवन अन्धकारमय होता है।

पुरूष का नाम आनन्दानुभूति है। व्यक्ति वही है जिसने जीवन में कुछ पाया है। जीवन जब आनन्द से परिचित होता है, जीवन में जब सत्य की अनुभूति होती है, तब जीवन का आनन्द ही अलग होता है। हमारा जीवन भी एक आनन्दमय जीवन बन सकता है, एक अनुकरणीय जीवन बन सकता है। हम भी किसी के लिए आदर्श बन सकते हैं। हमें भी इस जीवन में आनन्द प्राप्ति के लिए प्रयत्न करना चाहिए।

एक बहुत ही सम्पन्नशाली, वैभवशाली परिवार था। समस्त सुख सुविधाएँ उस परिवार में थीं। लेकिन किसी तरह से उनकी जीवन यात्रा चल रही थी, क्योंकि सुख-सुविधाओं के होते हुए भी उनके जीवन में कोई सत्य की अनुभूति नहीं थी। गरीबी अलग है, सम्पदा अलग है। पदार्थ अलग है, सुखानुभूति अलग है। सम्पन्नता से सुख का कोई सम्बन्ध नहीं है। वैभव के अभाव में दुःखानुभूति ही हो, यह अनिवार्य नहीं है। समस्यायें, विपत्तियाँ, संघर्ष आपको दुःखी बना दें, यह भी अनिवार्य नहीं। जो सुख को बाहर खोजता रहता है, वह विपत्तियों से प्रभावित होता है, समस्याओं से प्रभावित होता है और जिस व्यक्ति ने जीवन में आनन्द की अनुभूति की हो, प्रसन्नता को जीवन में समझा हो, उसका जीवन आनन्द से भरा हुआ है।

आपने उस आनन्द की ओर कभी दृष्टिपात नहीं किया। कहा भी है–

हे मन निज में निज को ढूँढ़ो, निज सत्ता को जल्दी पाओ।
मोह शत्रु को जीत के हे मन, मुक्ति रमा में रम जाओ।।

आप कह सकते हैं कि यदि हम सुखानुभूति नहीं चाहते, शांति पाने की बात नहीं सोचते तो क्यों हम इतनी दूर-दूर से कष्ट सहन करते हुए आपके दर्शनों को यहाँ आते और आपके वचनामृत का पान करने के लिए क्यों घण्टों इस धर्म सभा में बैठते? आपका कहना ठीक है। आपकी भावना सुखानुभूति की बनी है लेकिन अभी मन में शांति की भूख नहीं खुली है। अभी आनन्द की इच्छा हृदय में जागृत नहीं हुई है। जो भी मुस्कराहट है वह किराये से खरीदी हुई है, क्योंकि अभी आप तनावों एवं द्वन्दों से गुजर रहे हैं। तनावों और द्वन्दों की सारी सामग्री आपने अपने इर्द-गिर्द एकत्रित करके रखी हुई है।

ख्याल कर लेना, जो व्यक्ति तनावों की दुनिया से गुजर रहा है, द्वन्दों से जिसका जीवन पीड़ित है, वह जीवन सत्य की, सुख की, आनन्द की अनुभूति नहीं कर सकता। श्रीराम के जीवन में आनन्द की अनुभूति थी। भगवान महावीर के जीवन में सुख प्राप्ति के लिए जिज्ञासा बनी थी। महात्मा गाँधी को अपने जीवन में शांति की कामना थी। जिन महापुरूषों को जीवन में कुछ पाने की, कुछ करने की भावना होती है, वे तो आनन्दमय हो जाते हैं। जहाँ पाने की भावना नहीं, वहाँ जीवन कभी शांति से व्यतीत नहीं हो पाता।

सभी को यह अमूल्य नर तन मिला है। नर तन पाकर इसे यूँ ही न खोयें, बुद्धि में न जियें। आप अभी बुद्धि में जीते हैं, हृदय में नहीं। जो हृदय में जीता है उनका जीवन तो सुखमय, आनन्दमय, शांतिमय बनता है। लेकिन जो व्यक्ति बुद्धि में जीता है, वह विपत्तियों का शिकार होता है। बुद्धि तर्क को पैदा करती है। बुद्धि विचारों की श्रृंखला बढ़ाती चली जाती है। हृदय एक परमात्मा की आवाज है। आप सबके अन्दर वह परमात्मा विद्यमान है। एक कवि ने कहा है–

ढूँढ़ता फिरता है ए इकबाल, अपने आपको।
आप ही गोया मुसाफिर, आप ही मंजिल हूँ मैं।।

वह दिव्य शक्ति रूप परमात्मा हृदय में निवास करता है। जब आप हृदय की आवाज को सुनने लग जायेंगे तो किसी भी गलत कार्य में आपका प्रवेश नहीं होगा। निज की तरफ, परमात्म प्रभु की तरफ जब आपके मन का प्रवाह होगा तो आपको असीम आनन्द की प्राप्ति होगी। शांति बाहर नही, आपके अन्दर विद्यमान है। किसी कवि ने कहा है—

अपने घर को देख बाबरे, सुख का जहाँ खजाना रे।
क्यों पर में सुख ढूँढ़ रहा है, क्यों पर में दीवाना रे॥

जो बाहर खोजते रहेंगे, वह शांति की अनुभूति नहीं कर सकते हैं। आप सुबह जब सोने के बाद उठते हैं तो बड़ी थकावट, बड़ी बैचेनी का अनुभव करते हैं जबकि विश्राम के बाद तो आपको ताजगी का अनुभव होना चाहिए। और अनुभव कर रहे हैं भारीपन, बैचेनी, सिरदर्द। आखिर ऐसा क्यों? क्योंकि तनावों के शिकार होने के कारण जब आप चारपाई पर विश्राम करते हैं तो वह विश्राम नहीं होता है। आपने अभी विश्राम की कला नहीं जानी। तनावों, द्वन्दों की दुनिया में घूमने वाला मन कभी विश्राम नहीं कर पाता। इसके विपरीत जिसने जीवन में शांति को स्थान दिया, तनाव मुक्त जीवन जीते हैं, वह ठीक प्रकार से रात्रि विश्राम करते हैं। सुवह जागने पर अपूर्व उल्लास एवं ताजगी का अनुभव करते हैं। उनको कभी भारीपन, थकावट, सिरदर्द नहीं होता है क्योंकि रात्रि को सोने के पहले वह अपने परमात्म प्रभु का स्मरण करते हैं और सुबह उठकर उसी परमात्म प्रभु का स्मरण कर शांति एवं उल्लास का अनुभव करते हैं। पारिवारिक वातावरण में हम देखते हैं कि एक सास एवं बहू, ननद एवं भौजाई में युद्ध छिड़ा रहता है। सास ने बहू से दो-चार बातें कह दी। बहू भी शांत नहीं रहती। वह भी उत्तर-प्रत्युत्तर में उलझ घर के वातावरण को अशान्त कर देती है। लेकिन यदि दोनों में से एक भी शांति, सुख की इच्छा रखती हो तो इस तनाव को टाला जा सकता है।

कितनी ही प्रतिकूल ननद मिले, सास मिले, कितना ही प्रतिकूल पति मिले, सुख चाहने वाली बहू की शांति को वह छीन नहीं सकते, केवल उसके अन्दर सुख-शांति का लक्ष्य होना चाहिये।

दुःखों में सुखों की जो अनुभूति करता है, उसे विवेकी, सम्यग्दृष्टि,

धर्मात्मा, मुमुक्षु, साधक आदि के नामों से जाना जाता है। दुःखों में सुख की अनुभूति करना बड़ा कठिन कार्य लगता है। आपको सुनकर आश्चर्य होता है कि महाराज जी क्या कह रहे हैं? दुःखों में सुख का अनुभव कभी आप भी करके देखिए।

हम दो प्रकार के सुखों को जानते हैं, एक इन्द्रियजन्य और दूसरा अतीन्द्रियजन्य। इन्द्रियजन्य जो सुख है वह सुख नहीं, सुखाभास है क्योंकि इन्हीं इन्द्रियों के विषयों में फँसकर किस तरह प्राणी अपने जीवन का अंत करते हैं, इसकी एक झलक देखिए–

स्पर्श इन्द्रिय के कारण देखो, हाथी मारा जाता।
रसना का लोलुपी मीन, अपना गला फंसाता।।
गुलाम हुआ वह घ्राण इन्द्रिय का भौंरा पुष्प में जाता।
रस पीने में मग्न हुआ वह अपने प्राण गंवाता।।
जलता मरता और तड़फता जैसे शमा पर परवाना।
हिरण सर्प भी प्राण गंवाते जब सुनते हैं साज और गाना।।

इन्हीं के जीवन से प्रेरणा लेकर संत और आचार्य हमें दिशा देते हैं कि हे! भव्यात्माओ, इन इन्द्रियों से कुछ कल्याण कर लो। यह हाथ मिले हैं, इनसे कुछ दान कर लो, पैरों से तीर्थों की वन्दना कर लो। जिह्वा से प्रभु के गीत गा लो, नासाग्र दृष्टि करके ध्यान मग्न होकर नेत्रों से प्रभु का दर्शन कर लो, कानों से धर्म का श्रवण कर लो और इस चंचल मन को विषयों से हटाकर धर्म के चिन्तन और मनन में लगा लो। तो आप स्वयं अतीन्द्रिय सुख का अनुभव करने लग जाओगे। यह अतीन्द्रिय सुख शाश्वत होता है।

अब यह आप पर निर्भर है कि आप क्या चाहते हैं? दोनों ही सुख आप प्राप्त कर सकते हैं। लेकिन एक तो विषय वासना जन्य, भोगविलास को बढ़ाने वाला एवं नश्वर है, पाप एवं नरक गति का कारण है तो दूसरा अतीन्द्रिय सुख शाश्वत है।

कभी आपने सोचा? कभी अपने वैभव को, सुख को समझने का प्रयास किया? आप अपने आपको, अपने वैभव को भूल गए और आपने एक निराशावादी जीवन जीने का अभ्यास कर लिया हैं। यह पंक्तियाँ आप पूजन की पढ़ते हैं–

**भव वन में जी भर घूम चुका, कण कण को जी भर-भर देखा।
मृग-सम मृग-तृष्णा के पीछे, मुझको न मिली सुख की रेखा॥
झूंठे जग के सपने सारे, झूंठी मन की सब आशायें।
तन जीवन-यौवन अस्थिर है, क्षण भंगुर पल में मुरझायें॥**

बचपन से लेकर जब तक अर्थी की तैयारी नहीं हो जाती, तव तक सुख शांति तो चाहिए। लेकिन उस सुख-शांति को प्राप्त करने के लिए हमने नाना प्रकार के व्यसनों का आश्रय लिया। जिनको आप सुख सुविधा मान रहे हो, वही सुख सुविधायें आपके सिरदर्दी का कारण बनती जा रही हैं। बचपन में आप इतने बोझिल नहीं थे। किशोर अवस्था में इतने तनावयुक्त नहीं थे। ज्यों-ज्यों आपकी उम्र बढ़ती जाती है, आप समस्याओं के शिकार होते चले जाते हैं।

इसी तरह आज प्रत्येक परिवार में बहू-बेटे को लेकर माँ-बाप परेशान हैं। वह उनके पश्चिमी रंग में रंगे वस्त्र एवं आदतों से दुःखी हैं। घर में ३६ का आंकड़ा चलता है। घर परिवार बिखर रहे हैं। ऐसी स्थिति में बहू-बेटे हृदय से काम लें, मन में यह धारणा बनायें कि यह हमारे बड़े-बूढ़े हैं, हमारे जन्मदाता हैं, हमको इस उम्र तक पहुँचाने में इन्हीं हाथों का श्रम है, यदि इन्होंने कुछ कह भी दिया तो कोई बात नहीं। कभी-कभी इनके द्वारा कहीं हुई बात हमारे जीवन की दिशा ही बदल देती है। फिर गृहस्थी चलानी है, परिवार चलाना है तो थोड़ा सुनना-सुनाना तो पड़ता ही है। और यदि सहन नहीं करना था, सारे उलझनों में नहीं पड़ना था तो आप भी सती चन्दनबाला के मार्ग का अनुकरण कर लेते। आप भी सती सीता के जीवन का अनुकरण कर सकते थे। आप सेठ सुदर्शन, सुकुमाल, मुनि वारिषेण के जीवन का आश्रय लेकर अपने जीवन को हल्का-फुलका बना सकते थे।

जिस व्यक्ति के जीवन में विवेक है, वह व्यक्ति समस्याओं से दुःखी नहीं होता है। मन की आवाज होती है कि हमें ऐसा कार्य नहीं करना चाहिए। लेकिन बुद्धि कहती है अरे! कुछ नहीं होता, करो। जब भी आप गलत कार्य करते हैं, परमात्मा आपसे मना करता है। अन्तर आत्मा उस गलत कार्य से आपको रोकती है कि यह उचित नहीं है। आपकी आत्मा उस गलत कार्य

की गवाही नहीं देती है। वह बार-बार आपके आत्म वैभव की ओर संकेत करती है कि हे मानव-

तन मिला तुम तप करो, करो कर्म का नाश।
रवि शशि से भी अधिक है, तुममें दिव्य प्रकाश॥

तुम्हारे अन्तस् की ज्योति किसी से कम नहीं है। लेकिन जब तुम्हारी विचार-शक्ति बुद्धि से जुड़ जाती है तो आप जानते है, कैसा अनर्थ हो जाता है? पंडित बुद्धि में जीते हैं। नेता विचारों की गुलामी में जीते हैं। किन्तु साधु-धर्मात्मा किसी की गुलामी में नहीं जीते, वे तो अपने हृदय में जीते हैं। वह प्रभु की आज्ञा में चलते हैं, चैतन्यप्रभु की आवाज को सुनते हैं। इसके अतिरिक्त उन्हें कुछ सुनाई नहीं देता। आप जानते हैं कि ऐशो आराम की जिन्दगी जीने वाला, अधिक समय तक स्वस्थ एवं प्रसन्न नहीं रह पाता है। उसके लिए हजार समस्यायें एवं तनाव तैयार खड़े रहते हैं। तनावों की दुनिया में जीवन जीने वाला, अहंकार की, क्रोध की ज्वाला में जलने वाला जीवन अंधकारमय होता है। क्योंकि-

स्वर्णमयी लंका थी जिनकी, पल में हो गई राख।
वैसे ही तेरा वैभव भी, पल में हो जायेगा खाक॥

संसार की इसी असारता को देखकर ही संत आगाह करते हैं हमको कि-

मुठ्ठी बांधे आया है तू, हाथ पसारे जायेगा।
चंचल वैभव सारा तेरा, यहीं पड़ा रह जायेगा॥

अतः धन-वैभव के होते हुए भी हमें अपने परमात्मप्रभु को कभी नहीं भूलना चाहिए। दुनिया में आये, खाया-पिया और चले गए। ऐसे ही कितने मनुष्य इस पृथ्वी पर आते हैं, जिनकी कोई पहचान नहीं होती। अपने मनुष्य जन्म की कोई उपयोगिता उनको समझ में नहीं आती।

जिनका जीवन श्रावक के षट्आवश्यक कर्तव्यों से जुड़ा होता है, धार्मिक आयतनों से जुड़ा होता है, वह अपने जीवन को सफल बना लेते हैं। आचार्य कहते हैं-

देवपूजा, गुरूपास्ति, संयम और स्वाध्याय।
इसी से होती है श्रावक को पुण्य की आय॥

देव पूजा, परमात्मा की भक्ति का अपना महत्व है। पूजन और प्रक्षाल का अपना प्रभाव है। पूजन का सम्बन्ध हमारी शारीरिक एवं आत्मिक शांति से है। यह प्रभु के प्रति समर्पण की प्रक्रिया है, तनावमुक्ति का साधन है। जब जीवन में किसी महापुरूष के प्रति श्रद्धा बनती है, उनका गुणानुवाद जब आरम्भ होता है तो अहंकार रूपी पर्वत का गिरना आरम्भ हो जाता है। अहंकार रूपी पर्वत के गिरते ही जीवन में नम्रता आती है। इसी से हमारे मानसिक तनाव कम होते हैं। नहीं तो, यह सभी मिलकर हमारे जीवन को नर्क बना देते हैं। क्योंकि–

राग, द्वेष, मद, मोह, मान का बना हुआ है आतम नौकर।
घृणा, पाप और बैर सदा ही, संयम को देता है ठोकर।।

अतः हमें अपनी आत्मा के वैभव को पहचान कर इन इन्द्रियों की गुलामी से उसे मुक्त करना पड़ेगा। तभी हमारा जीवन सरल, सहज बन सकेगा। अपने आत्म वैभव को पहचान कर हमें परमात्म प्रभु के प्रति समर्पण का भाव जाग्रत करना चाहिए क्योंकि–

धारण कर लो धर्म धुरा को, धर्म ही सुख का दाता है।
धर्म बिना इस जीवन में कहीं नहीं सुख पाता है।।

प्रभु पूजन तथा अभिषेक के लिये हमें अपने वस्त्रों की शुद्धि का भी ध्यान रखना चाहिए। विदेशों में आप जाकर देखें, शुद्धता पर कितना बल दिया जाता है? हमारी आहारचर्या तो और भी अधिक वैज्ञानिक है। लेकिन हमने प्रत्येक क्षेत्र में शिथिलता अपनाई है। आप ऑपरेशन थियेटर में देखते हैं, जूते पहनकर आप वहाँ प्रवेश नहीं कर सकते। डॉक्टर औजारों को उबालकर प्रयोग करते हैं जिससे कि कोई भी घातक जीवाणु शरीर में प्रवेश न कर सके। कम्प्यूटर कक्ष में भी आप प्रवेश करते हैं तो वहाँ पर भी जूते-चप्पल आपको बाहर ही उतारने पड़ते हैं। नहीं तो गंदगी के वैक्टीरिया उसको प्रभावित करने लगते हैं। अतः प्रभु की पूजन में हमें शरीर और वस्त्रों की शुद्धता पर ध्यान रखना चाहिए, जिससे कि शुद्ध भावों से हम उस शुद्धता की पूजा/अर्चना कर सकें। शारीरिक शुद्धि, द्रव्यशुद्धि भावशुद्धि में माध्यम बनती है।

अत: आनन्दमय, शांतिमय, उल्लासमय जीवन की अनुभूति के लिए हम सभी को अपने मानसिक तनावों को दूर करना पड़ेगा। दु:खों में भी सुख की अनुभूति करें। अपने हृदय की आवाज को सुनें जिससे कि हमारे कदम बुराईयों की ओर न बढ़ सकें। धर्म की धुरी का सहारा लेकर, ऐशोआराम की जिन्दगी छोड़कर हम भी मोक्षमहल की प्राप्ति कर सकते हैं, जीवन को सुख-शांतिमय बना सकते हैं। जीवन का आनन्द आत्मा में ही है लेकिन उसे हम देह की कीचड़ में ढूंढने निकल जाते हैं। जो धर्म को पा लेते है, धर्म की शरण में चले जाते हैं, वे सच्चा सुख पा लेते हैं। सच्चा धर्म संसार के दु:खों को हटाकर उत्तम सुख की प्राप्ति कराता है, मगर उसकी खोज हमें ही करनी पड़ती है। परमात्मा से यदि मिलना है तो देह को सीढ़ी बनाना। सीढ़ी को पकड़कर मत बैठ जाना। सीढ़ी तो केवल चढ़ने-उतरने के लिए होती है, पकड़ कर बैठ जाने के लिए नहीं। हमारा मन चंचल है जो सदैव बाहर की तरफ भागता हैं। विचार हमारे गंदे चलते रहते हैं। भौतिक साधन हमारे चारों तरफ बिखरे पड़े हैं। संत हमें प्रेरणा देते हैं इनसे सावधान रहने के लिए। संत हमें अन्धकार से प्रकाश की ओर ले जाते हैं। सत्संग से, सन्त संगति से जब हमारा विवेक जागृत हो जाता है तो हम उस परमानन्द प्राप्ति के मार्ग पर चल पड़ते हैं और सत्य के निकट पहुँचने का रास्ता प्रशस्त होता है। एक दिन हम भी आत्मा से परमात्मा बनने की यात्रा पूरी करते हैं। संत चरणों में पहुँचने से जिन्दगी में वीतराग विज्ञान का आगमन होता है और भौतिक विज्ञान से मुक्ति एवं परमात्म पद की प्राप्ति होती है।

"अहिंसा विश्वधर्म की जय"

卐 ———— 卐 ———— 卐

विवेकी जीवन

यो व्यापको विश्वजनीनवृत्तिः सिद्धो विबुद्धो धुतकर्मबन्धः
ध्यातो धुनीते सकलं विकारम् स देव देवो हृदये ममाऽस्ताम्।।

बन्धुओ! गीता में एक प्रसंग आता है–

यत्तु प्रत्युपकारार्थं फलमुद्दिश्य वा पुनः।
दीयते च परिक्लिष्टं तद्दानं राजसं स्मृतम्।।१७/२१

अर्थात् जो दान क्लेशपूर्वक तथा प्रत्युपकार के प्रयोजन से अथवा फल को दृष्टि में रखकर दिया जाता है वह दान राजस कहलाता है। नारायण श्रीकृष्ण ने गीता के माध्यम से यह बताने का प्रयास किया है कि क्लेश जिसके जीवन में होगा, ऐसा क्रोधी व्यक्ति कभी धर्मात्मा नहीं बन सकता है क्योंकि–

क्रोध कर-कर के कमठ ने, नरकों में वास किया।
क्षमा धारकर पार्श्व प्रभु ने, मोक्ष में निवास किया।।

अहंकारी व्यक्ति के मन में कभी भी परमात्म प्रभु के प्रति श्रद्धा, आस्था नहीं बन पाती है। अनन्तानुबन्धी चौकड़ी का वृक्ष जब तक आपके जीवन में हरा-भरा है, वह कभी तत्त्व का अभ्यासी नहीं हो सकता है। जब तक निज चैतन्य से, स्व वैभव से हमारा परिचय नहीं हो जाता, तब तक हमारे कषायों के संस्कार दूर नहीं हो सकते हैं। कषाय रूपी संस्कार धोने के लिए हमें धर्मरूपी साबुन का प्रयोग करना एवं जानना अत्यन्त आवश्यक है। धर्म के विषय में कहा जाता है–

धर्म करत संसार सुख धर्म करत निर्वाण।
धर्म पंथ साधे बिना, नर तिर्यञ्च समान।।

आज व्यक्तियों के अन्दर आकुलता अधिक बढ़ रही है। उसका कारण है संक्लेश का परिणाम। धार्मिक अनुष्ठान एवं क्रियाओं का मुख्य उद्देश्य है– परिणामों को निर्मल बनाना एवं जीवन में सदाचार को बढ़ावा देना। जब हमारे परिणाम निर्मल होंगे तो हमें सुख एवं शांति का अनुभव होगा। सुख

और शांति वैभव से मिलने वाली नहीं है। वैभव से तो संक्लेशों में और अधिक वृद्धि होती है। हम लोग बाहर का वैभव तो बहुत जुटाते हैं लेकिन आत्मा के वैभव की ओर हमारा लक्ष्य नहीं बनता है। आत्मा के वैभव से हमारा परिचय भी नहीं होता है। आत्मा का जो ज्ञायक स्वभाव है, अनन्त शक्ति है, ज्ञान गुण, दर्शन गुण है, यह सभी आत्मा के अन्दर मौजूद है। हम अपने घर को तो देखते नहीं, दूसरों के घर में झाँकते रहते हैं। दूसरों के घरों में जो झाँकता रहेगा, उसकी गरीबी मिटने वाली नहीं है।

यदि कोई व्यापारी अपनी दुकान छोड़कर दूसरे की दुकान पर बैठा रहे, बात चीत करता रहे, ताश खेलता रहे, टी० वी० देखता रहे और कहे कि मैं तो गरीब हूँ, मेरा तो धन्धा ही नहीं चलता तो आप उसे मूर्ख कहेंगे। आप अपनी दुकान खोलिए, साफ सफाई करिये और बैठिए तभी तो दाम, पैसा आयेगा, दुकान चलेगी और यश मिलेगा।

संक्लेश करने वाला कभी भी पंचपरमेष्ठी के प्रति समर्पित नहीं हो पाता है। जब परिणामों में उथल-पुथल चल रही है, आकुलताऐं चल रही हैं तो वहाँ पर आत्मा की भक्ति, परमात्मा की भक्ति नहीं हो सकती है। इसके लिए तो कषायों की मन्दता अपेक्षित है। इसीलिए आचार्य कहते हैं–

इन्द्रिय सुख के पाने हेतु, धर्म कार्य को छोड़ रहे।
सप्तव्यसन का आलिंगन कर, धन के पीछे दौड़ रहे॥
कब तक दौड़ोगे तुम मानव, मानव हो तो रूक जाओ।
भ्रम जाल में फंसकर के यूँ, व्यर्थ जीवन मत गँवाओ॥

तीव्र कषायें आपकी होंगी तो जिनवाणी के पढ़ने-सुनने में रूचि नहीं होगी, तीव्र संक्लेश परिणाम हैं तो मंदिर जाने के भाव नहीं होंगे। संक्लेश परिणाम वाले के सामने यदि कोई धर्म की बात करता है तो वह दुश्मन नजर आता है। इसलिये कहा जाता है कि जब किसी का पारा चढ़ा हुआ हो तो मौन रहना ही अधिक उचित है। पुरानी कहावत है–

"सिरा सिरा के खाव"

अर्थात् गरम खिचड़ी में हाथ डालोगे तो वह जलेगा ही। अतः ठण्डी करके खाना चाहिए।

संक्लेश रूपी तपन जिनके जीवन में चल रही है, कषायों की तीव्रता चल रही है, वह धर्मात्मा नहीं है। इस नर जन्म के लिए तो देवता भी तरसते हैं। सर्वार्थ सिद्धि के देव भी एक बार नर जन्म प्राप्ति के लिए लालायित रहते हैं, इसीलिए कहा जाता है–

पूर्वकृत पुण्य के उदय से तूने मनुष्य पर्याय पाई है।
अगले भव के लिए कर ले, पुण्य की कमाई है।।
पुण्य ही होता है इस जगत में सहाई।
पुण्य के बिना तो भाई भी होता है कसाई।।

हमें यह नर जन्म, मुनष्य पर्याय बहुत मुश्किल से मिली है। कितनी योनियों में भ्रमण करने के उपरान्त किसी पुण्योदय से मनुष्य पर्याय पाई है। यदि इस पर्याय को भी संक्लेशों में व्यतीत कर दिया तो वही भव भ्रमण का चक्र चलता रहेगा। आत्म विकास का अवसर है यह मनुष्य जन्म। संसार भ्रमण की चर्चा करते हुए पंडित दौलतराम जी ने कहा है कि–

ऐसे मिथ्या दृग ज्ञान चरण, वश भ्रमत भरत दुःख जन्म मरण।
तातें इनको तजिए सुजान, सुन तिन संक्षेप कहूँ बखान।।

मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान, मिथ्याचारित्र तो संसार के कारण हैं। सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र ये तीन शांति के उपाय हैं। जो शरीर को आत्मा मानता हुआ पर पदार्थ में आसक्त रहता है, उसे आकुलता होती है, तनावों की वृद्धि उसके जीवन में होती है।

यह संसार तो क्षणभंगुर है, विनाशशील है। ऐसा ज्ञान जब हो जाता है तो फिर मन में संक्लेश परिणाम शांत होने लगते हैं, क्योंकि इस संसार का स्वाभाविक चक्र उनको समझ में आने लगता है कि–

यौवन की हरियाली बीती, और शुष्क बुढ़ापा आ धमका।
काया का पतझड़ खूब हुआ, कभी यहाँ गिरा कभी वहाँ गिरा।।

परस्पर व्यवहार की परम्परा से दिया गया दान भी राजस है। हमारे यहाँ शादी विवाह में जो पारस्परिक व्यवहार की परम्परा है, वह भी श्रेष्ठ नहीं मानी जाती है। नैतिकता यह कहती है कि तुम तो अपना कर्तव्य करो, बदले की भावना रखोगे तो अशांति होगी। हम सोचते हैं कि हमने अपनी संतान के

लिए क्या-क्या नहीं किया? वह तो हमारी बात ही नहीं मानती। बड़ा दुःख होता है। एक प्रसंग आता है-

एक महात्मा जी ने नदी के किनारे एक बिच्छू को तड़फते देखा तो उसको बचाने का प्रयास किया। जैसे ही महात्मा जी उसको बचाने के लिए हाथ बढ़ाते, वह हाथ में डंक मार देता है। महात्मा जी उसको बार-बार सहलाते और वह बार-बार डंक मारता। लोगों ने कहा कि महात्मा जी कितने मूर्ख हैं कि बिच्छू को बचाने के चक्कर में कितना कष्ट सहन कर रहे हैं। लेकिन बन्धुओं! बिच्छू का स्वभाव ही है डंक मारना है। बचाने वाले पर, उपकार करने वाले पर भी वह डंक मारता है, अपना स्वभाव नहीं छोड़ता। लेकिन हम अपना स्वभाव छोड़ चुके हैं। तत्त्वार्थ सूत्र में एक सूत्र आता है-

परस्परोपग्रहो जीवानाम्।

अर्थात् जीव एक दूसरे का उपकार कर जीवों की रक्षा करें। महात्मा जी तो अपना कर्तव्य करते रहे, उनकी कोई अपेक्षा नहीं थी। लेकिन हम ज्यादा अपेक्षायें रखते हैं तो दुःख होता है। ज्यादा अपेक्षा से तनाव होता है, अटैक होता है। संतान के प्रति हमने अपना कर्तव्य किया, पाला-पोषा, बड़ा किया, अब वो जाने। माने तो ठीक, नहीं माने तो ठीक, अत्यधिक नहीं सोचना। उपकार करके भूलना ही शांति का उपाय है।

फल के उद्देश्य से कोई चीज नहीं देनी चाहिए। महाराज श्रेयांस ने आदिकुमार मुनिराज को आहार दिया। जब वे आहार दे रहे थे तो पंचाश्चर्य की वृष्टि हुई। हम भी बिना लोभ, प्रयोजन के धार्मिक कार्य करते हैं तो उसकी फलश्रुति होती है। श्रावक की भूमिका में षट्आवश्यक कर्तव्यों का पालन करते हुये हमें अपेक्षाओं को नहीं रखना चाहिए।

सम्यग्दृष्टि, धर्मात्मा व्यक्ति कभी भी परेशानियों से विचलित नहीं होते हैं। उनका मनोबल बड़ा ऊँचा होता है। छोटे-छोटे नियम संकल्पों का वैज्ञानिक दृष्टि से बड़ा महत्व होता है। यह हमारी इच्छा शक्ति को बढ़ाने में कारण बनते हैं। बिना मनोबल एवं दृढ़ इच्छा शक्ति के आप कोई भी

कार्य नहीं कर सकते हैं। हम कोई भी कार्य करें, परिश्रम करने के बाद हमें फल की चिंता नहीं करना चाहिए। इसी बात पर श्रीकृष्ण ने गीता में जोर दिया है–

"कर्मण्येवाधिकारिस्ते मा फलेषु कदाचन"

परिश्रमी के लिए लोहे के चने भी कठोर नहीं रह जाते हैं। प्रमादी, आलसी के लिए प्रत्येक चीज कठिन है। जो विद्यार्थी परिश्रम करते हैं, कठिन से कठिन विषय भी उनको सरल लगता है और जो विद्यार्थी पढ़ाई से जी चुराते हैं, उनके लिए सरल विषय भी कठिन लगते हैं क्योंकि विद्याध्ययन भी एक तपस्या है। महाभारत में कहा भी है–

सुखार्थिनः कुतो विद्या नास्ति विद्यार्थिनः सुखम्।
सुखार्थी वा त्यजेत् विद्यां विद्यार्थी वा त्यजेत् सुखम्।।

अर्थात् सुखेच्छुक को विद्या कहाँ, विद्यार्थी को सुख कहाँ, सुखार्थी को विद्या का त्याग कर देना चाहिए अथवा विद्यार्थी को सुख का त्याग कर देना चाहिए।

अतः हमें जीवन में परिश्रम करना चाहिए। अभ्यास के बल पर बड़े-बड़े कठिन कार्य भी सरल हो जाते हैं। कोई भी समस्या छोटी-बड़ी नहीं होती। यह हमारी मानसिकता पर निर्भर है कि जरा सा कोई प्रसंग मिला और हम घबरा जाते हैं, विचलित हो जाते हैं। हमें अपने जीवन में प्रयत्नशील रहते हुए उत्साह में वृद्धि करना चाहिए। असफलता की बात तो सोचना भी नहीं चाहिए। हमेशा प्रसन्न रहकर अपने कर्तव्य का निर्वाह करना चाहिए।

हर चीज की अति बुरी होती है। नमक जहाँ सब्जी का स्वाद बनाता है वहीं अधिकता से स्वाद भी बिगड़ जाता है। इसलिए कहा है–

हर स्वाद अधिकता से बेस्वाद हो जाता है,
हर बात अति आग्रह से विवाद हो जाता है।
सीमा को लांघकर अति में उतरने वालो,
हर आह्लाद अहं से उन्माद हो जाता है।।

प्रत्येक कार्य में वस्तु की मर्यादा का ध्यान रखना चाहिए। मन की चंचलताओं पर नियंत्रण कर अपना कर्तव्य करना चाहिए। हमारा जीवन दिन-रात विषय-कषायों में, सांसारिक प्रसंगों में व्यतीत हो रहा है। इन कार्यों को करते हुये भी हमें विवेक को जाग्रत रखना चाहिए एवं संसार की क्षणभंगुरता को अपनी दृष्टि में रखना चाहिए। कहा है कि-

मुठ्ठी को बाँधे आया था तू हाथ पसारे जायेगा।
काया में रहता आया है काया को तजकर जायेगा।।

महाबली रावण, विश्व विजेता सिकन्दर, लिंकन, हिटलर इन सभी का जीवन एवं मरण हमें यह संकेत देते हैं कि-

चार दिन की चाँदनी, फिर अँधेरी रात है।
सारे ठिकाने जायेंगे, रहने की झूठी बात है।।

इसलिए जीवन में अच्छे और बुरे का विवेक जरूर रखना चाहिए। जिस क्षण भी जीवन में विवेक जाग्रत हो जाये, तभी से आस्रव की नाली बन्द करने का उपक्रम करना चाहिए। जितनी तीव्र कषाय के साथ जो कार्य होगा उतना ही तीव्र कर्मबन्ध होगा। अतः हमें कषायों को कम करने का सतत् प्रयास करना चाहिए और उस शाश्वत सत्य के प्रति, परमात्म प्रभु के प्रति अपना ध्यान एकाग्र करना चाहिए जिससे कि हमारे कर्मों की गठरी कुछ हल्की हो सके, क्योंकि-

धर्म पतित को पावन करता, धर्म तिमिर में ज्योतित करता।
धर्म राह में फूल बिछाता, धर्म पाप को निश दिन हरता।।

जब भी हमारा ध्यान धर्म की ओर, परमात्म प्रभु की ओर दौड़ने लगेगा तो हमारे कर्मों का आस्रव भी धीरे-धीरे कम होने लगेगा। आर्तध्यान की प्रक्रिया भी अशांति, क्लेश का कारण है। इष्टवियोग और अनिष्टसंयोग में साम्यभाव धारण करना चाहिए। ज्ञान स्वभाव की अनुभूति, शुद्धोपयोग की उपलब्धि ही धर्मात्मा का चरम लक्ष्य है। हमें अपने आत्मतत्त्व से परिचय करने का प्रयास करना चाहिए। यह प्रक्रिया छोटे-छोटे नियम और संकल्पों के माध्यम से दृढ़ होती चली जाती है और भक्त भी एक दिन भगवान बन

जाता है क्योंकि–

लघु त्याग के कारण, सिंह महावीर तक बन जाता है।
एक राग के कारण, रावण नर्कों का दु:ख पाता है।।

हम भी इस प्रक्रिया को, इन उदाहरणों को अपने विवेक से जीवन में उतारें, इनसे कुछ सीख लें तो इस असार संसार से हमारी आसक्ति कुछ हद तक कम हो पायेगी, वरना संसार के समस्त भोगोपभोगों को अपना मानता हुआ प्राणी दु:खी होता है–

मैं सुखी-दु:खी मैं रंक-राव मेरे धन गृह गोधन प्रभाव।
मेरे सुत तिय मैं सबल दीन, वे रूप सुभग मूरख प्रवीन।।

हमारी स्थिति बिल्कुल अपने स्वभाव से विपरीत हो गई है। जो अपना नहीं है, उसको तो अपना रहे हैं। लेकिन जो अपना है, जिससे हमारा शाश्वत नाता है, उसकी याद ही नहीं है। हमने उस आत्मतत्त्व के स्वरूप को जाना ही नहीं है। जब तक भीतर के अस्तित्त्व पर विश्वास नहीं होता है, तब तक सम्यग्दर्शन की भूमिका नहीं बनती है। सम्यग्दर्शन के लिए भीतर अस्तित्त्व की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। सम्यग्दर्शन शब्दों का विषय नहीं, भीतर की श्रद्धा का विषय है। हमें सभी का पता मालूम है, लेकिन स्वयं का पता मालूम नहीं है। जबकि स्वयं को जाने बिना सारा संसार जान लेना व्यर्थ है। निर्वाण संसार के पदार्थ को जान लेने से नहीं अपितु स्वयं के जान लेने से होता है। सम्यग्दर्शन प्राप्त होते ही साधक सत्य की गहराई में चला जाता है। सत्य की खोज में निकलते ही भीतर दिव्यता का जन्म होने लगता है।

हमें सतत् अपने प्रयास से, लगन से, कर्म से, श्रद्धा एवं भक्ति से उस परमात्म प्रभु की दिव्यता को प्राप्त करने में लगना चाहिए। लेकिन स्थिति विपरीत है। हम पर्यायजन्य, गरीब-अमीर के भेदों में उलझे रहते हैं। मोह के मद में इसी संसार में भटकने के कार्य करते रहते हैं। मदिरा से भी ज्यादा नशा इस मोह का है–

मोह महामद पियो अनादि, भूल आपको भरमत वादि।

मोहनीय कर्म को यदि पछाड़ दिया जाये तो सातों कर्म अपने आप वश में हो जाते हैं। यह मोह रूपी मदिरा हम सबको नचाती रहती है। हम भी उसी के वश में होकर इस संसार में घूमते रहते हैं। सम्यग्दर्शन का बाधक तत्त्व मोह मीठा बदमाश है। यही सारे कर्मों को निमंत्रण देता है। आचार्य समन्तभद्र ने ज्ञान की चर्चा के उपरान्त मोह की चर्चा की। मोह व्यक्ति की खुली आँखों पर पट्टी बाँध देता है। मोह का अंधकार परमात्मा को देखने नहीं देता है। मोह को समाप्त करने के लिए भीतर के निरीक्षण की आवश्यकता है। मोह प्रज्ञा पर चेतना का पर्दा डाल देता है, चेतना को धूमिल कर देता है। मोह का अर्थ ही है– जो मेरा नहीं उसे अपना समझ लेना, व्यर्थ की मालकियत जमा लेना। दूसरों पर शासन करने में बड़ा आनन्द आता है। मैं और मेरेपन के गहरेभाव में आत्मा फँसी हुई है। मोह बहुत गहरा है जो सतत् दुःख देता है। सभी मोह टूट जाते हैं। लेकिन अहंकार का मोह टूटना बहुत बड़ी बात है। नाम और यश की चाह टूटना मोह का नाश है। मोह के टूटते ही मोक्ष करीब आने लगता है, जीवन अनन्त ऊँचाई की ओर पहुँचने लगता है।

मोह जब गहरा होता है तो हमें अधोगमन की यात्रा कराता है और वही जब नाश होने लगता है तो उर्ध्वगमन की ओर ले जाता है। मोह जड़ है। उसको काटना बहुत जरूरी है। मोह की संताने काम, क्रोध लोभ हैं। मोह में सर्वप्रथम काम पैदा होता है। काम की पूर्ति नहीं होती तो क्रोध जन्म लेता है। मोह अंधा करता है और क्रोध पागल।

अग्नि से भी ज्यादा गर्मी क्रोध में है। अग्नि तो कभी ठण्डी हो जाती है किन्तु क्रोध रूपी अग्नि यदि एक बार जल गई और उसके साथ अनन्तानुबन्धी रसायन और मिल गये तो क्रोध कषाय और अधिक बढ़ती जाती है। सम्यग्दृष्टि कभी भी इसके वशीभूत नहीं होता है।

जीवन हमारा बहुत छोटा है। विषय भोगों में डूबे रहने से जीवन और छोटा होता जाता है। हमारे जीवन के वृक्ष पर केवल विषाद के फूल ही लगे हैं। हम जीवन भर चलते हैं लेकिन पहुँचते कहीं पर नहीं है। हमारा जीवन

कोल्हू के बैल की तरह है। कोल्हू का बैल दिनभर चलता है लेकिन शाम को जब आँखों पर से पट्टी हटाई जाती है, तब पता चलता है कि कहीं पर नहीं पहुँचे, वहीं के वहीं हैं। वैसे ही मनुष्य के पास जब मृत्यु आती है, तब पता चलता है कि हमने कुछ नहीं पाया।

अत: हमें अपने जीवन में संक्लेश परिणामों की शांति के लिए गुरू एवं संतों के चरणों का सानिध्य प्राप्त करना चाहिए। जो सत्य से परिचय करा दे वह सन्त और तिमिर मिटा दे वह गुरू है। जीवन में गुरू के साथ जुड़कर ही जीवन की शुरूआत होती है। गुरू जीवन का विकास करके निर्वाण तक पहुँचा देने में माध्यम बनते हैं। हमारे समस्त परिणामों, संकल्पों-विकल्पों राग-द्वेष एवं विकारी भावों की समाप्ति हेतु तथा परमानन्द की प्राप्ति के लिए हमें परमात्म प्रभु की शरण में जाना चाहिए जिससे की हमारा मनुष्य जन्म सफल एवं सार्थक हो सके तथा हम जीवन में सुख एवं शांति प्राप्त कर सकें।

"अहिंसा विश्वधर्म की जय"

卐———卐———卐

जो करता है बाँटकर, भोजन का उपयोग।
कभी न व्यापे भूख का, उसे भयंकर रोग।।

जो मनुष्य अपनी रोटी दूसरों के साथ बाँटकर खाता है उसको भूख की भयानक बीमारी कभी स्पर्श नहीं करती।

卐 卐 卐

कृपण द्रव्य को जोड़कर, करे नाश का योग।
चाखा उसने ही नहीं, मधुरदान का भोग।।

वे निष्ठुर कृपण लोग जो धनसंग्रह कर-कर के उसको निकम्मा करते हैं, उन्होंने कभी दूसरों को दान देने का आनन्द ही नहीं लिया।

क्षणभंगुर जीवन की कलियाँ

बोधिः समाधिः परिणामशुद्धिः स्वात्मोपलब्धि शिवसौख्यसिद्धि।
चिन्तामणिं चिंतितवस्तु दाने त्वम् वन्द्यमानस्य ममाऽस्तु देवि।।

बन्धुओं! ज्ञानार्णव ग्रन्थकार आचार्य शुभचन्द्र स्वामी ने एक कारिका के माध्यम से संसार की स्थिति का वर्णन किया है–

गीयते यत्र सानन्दं पूर्वाह्णे यद् गृहलतं।
तस्मिन्नेव हि मध्याह्ने, सदुःखान्याधिरूह्यते।।

अर्थात् जिस घर में प्रातः काल आनन्द एवं उत्साह के साथ गीत गाए जा रहे थे, मध्याह्न में उसी घर में दुःखों की लहर प्रारम्भ हो गई। आपके जीवन में भी कई बार इस तरह के प्रसंग आते होंगे। यह देखने में आता है कि किसी लड़के की शादी हो रही है, भॉवरें डाली जा रही हैं, ऐन वक्त पर लड़के को या उसके पिता को हार्ट अटैक हो जाता है, मंगल में जंगल की स्थिति बन जाती है। घर में बहू प्रवेश कर रही है, सास जी मंगलगान कर रही हैं, शुभकामना, मंगल-भावनायें भायीं जा रही हैं, मालूम पड़ा करेंट लग गया और वहीं ढेर हो गई। यह संसार की स्थिति है।

जीवन के ऐसे प्रसंग कुछ देर के लिए हमारी नींद को भंग करते हैं। वैसे तो हम अपने आपको भूले हुए हैं लेकिन जब इस तरह की घटनाएँ प्रकाश में आती हैं तो फिर हम संसार की क्षणभंगुरता, असारता के बारे में सोचने पर मजबूर होते हैं कि–

रोकर गाकर तन तो आखिर, मिट्टी में मिल जाना है।
क्षणभंगुर जीवन का नाटक, किसका कौन ठिकाना है।।

जब हमें इस संसार की असारता का अहसास होता है, जब हम चारों तरफ से अशांत एवं दुःखी होते हैं तो अध्यात्म के अतिरिक्त हमें कोई उपाय समझ में नहीं आता है। तभी हमें धर्म की बात, मंदिर की बात

एवं चन्दा बाबा की याद आती है। जब कभी घर में कलह हो जाती है, पत्नी से मनमुटाव हो जाता है, माँ से तनाव हो गया, सर्विस में किसी तरह की दिक्कत आई तो किसी तीर्थक्षेत्र पर मन प्रसन्न करने के लिए चले जाते हैं।

मैं उन विलासी एवं भोगी व्यक्तियों की बात कर रहा हूँ जिनको धर्म से एलर्जी है। कुछ लोग नशीले पदार्थ, धूम्रपान या मदिरा पीकर मूड को फ्रेश करते हैं। आम प्रवचन होता है। वहाँ गुण्डे एवं सैकड़ों शराबी भी सभा में आकर बैठ जाते हैं। और जब उनसे चर्चा हुई तो मालूम चला हर व्यक्ति शांति चाहता है। शराब पीने वालों से पूछिए कि उसकी क्या मजबूरी है? वह कहता है गम भुलाने के लिए शराव पीता हूँ। रात को नींद नहीं आती, 50 केस अदालत में चल रहे हैं, कैसे सो पाऊँगा? कुछ युवा लोग कहते हैं कि जब शराब ओठों पर पहुँचती है तो शरीर में ताकत आती है, जोश आता है। किन्तु मेडीकल साइंस सिद्ध करता है कि शराब पीने से जोश नहीं आता है। जितने भी नशीले पदार्थ हैं वे शुरू में तो ताकत का अनुभव कराते हैं, किन्तु इनका परिणाम बड़ा खतरनाक सिद्ध होता है। आपकी धमनियों, ग्रन्थियों एवं कोशिकाओं पर इनका बड़ा दुष्प्रभाव पड़ता है। ज्यों-ज्यों मात्रा बढ़ती जाती है, जोश ठण्डा पड़ता जाता है और शरीर थकता चला जाता है। इसलिए जितने नशीले पदार्थ हैं वे ताजगी नहीं लाते हैं। विज्ञापन में आप पढ़ते हैं कि शरीर में जोश लाता है, बुढ़ापे में जवानी सी ताकत लाता हैं। यदि ऐसा होता तो फिर तिजारा, महावीरजी आदि तीर्थक्षेत्रों में माइन्ड फ्रेश करने आप नहीं जाते। विलासिता की जितनी सामग्री है, उससे आपको तनावों से मुक्ति नहीं मिलती। थोड़ा बहुत आराम जरूर मिल सकता है क्योंकि यह आपका अभी नया शौक है। ऐसे-ऐसे लोग हैं दुनिया में जिनके मुख का कुल्ला भी दारू से होता है। वह मर मिटे, बर्बाद हो गए।

आज पढ़े लिखे, बुद्धिजीवी वर्ग में भी इसका प्रचलन चल रहा है। यह अपने को आधुनिक सिद्ध करने के चक्कर में शराब पीते हैं। आज की मानसिकता ही ऐसी है कि बिना व्हिस्की बीयर के तो व्यक्ति बैकवर्ड में गिना जाता है। आज तो शादी-विवाह के अवसर पर आमन्त्रण पत्र में खुला

न्यौता दिया जाता है एवं मांसाहार तथा पीने वालों की विशेष व्यवस्था की जाती है। यह हमारे जीवन की विसंगतियाँ हैं।

आज तनावों एवं अशांति का कारण हमारा नैतिक पतन है। हमने एडवांस बनने के चक्कर में अपनी नैतिकता, संस्कृति को भुला दिया है और पाश्चात्य संस्कृति तथा विलासप्रिय जीवन की ओर भाग रहे हैं। लेकिन इस विलासप्रियता से हमें मन की शांति नहीं मिल सकती है। इसीलिए कहा गया है–

धन से मानव मिल सकता है, पर मानवता तुझे नहीं।
धन से मुत्यु मिल सकती है, पर अमरता तुझे नहीं।।
धन से पुस्तक मिल सकती है, पर ज्ञान तुझे नहीं।
धन से आराम मिल सकता है, पर राम तुझे नहीं।।

आज हमारे देश की स्थिति विपरीत नजर आती है। जहाँ धर्म और अहिंसा की गंगा प्रवाहित थी, वहाँ मांसाहार, मदिरापान एवं अनैतिकता की चरम सीमा का बोलबाला है। जबकि पाश्चात्य देश आज धर्म की ओर उन्मुख हो रहे हैं।

सूती वस्त्र स्वास्थ्य की दृष्टि से अत्यन्त लाभदायक हैं। हमारे देश में पहले लोग सूती वस्त्रों का उपयोग करते थे। लेकिन आज तरह–तरह के वस्त्रों का निर्माण एवं उपयोग हो रहा है। रेशमी वस्त्रों के निर्माण में असंख्य कीड़ों की शारीरिक हत्या होती है। उसी के परिणाम स्वरूप ४० से ७० प्रतिशत लोग चर्म रोग के शिकार हो रहे हैं। लोगों के गले में, सिर में, हाथ पैर आदि में सफेद दाग की शिकायतें बढ़ रही हैं। इन सबका कारण हमारा अप्राकृतिक जीवन है। हमारे देश में धोती, कुर्ता एवं टोपी का प्रचलन था। जितने ढीले वस्त्र होंगे, उतने ही लाभप्रद एवं स्वास्थ्यप्रद होंगे। जितने चुस्त कपड़े होंगे, वह चर्म रोगों के कारण बनेगें। आज विदेशी कपड़ा सस्ता और सूती कपड़ा महँगा हो गया है क्योंकि विदेशियों ने सूती कपड़ा पहिनना शुरू कर दिया है।

महात्मा गाँधी ने क्यों चरखा और पोनी को अपने जीवन का अंग बनाया? वह इसके माहात्म्य से परिचित थे। खादी सर्दी में तो गरम होती है

और गर्मी में ठंडी होती है। सूती कपड़े के रेशों में वायु स्वयं पास होती रहती है। शरीर से जो पसीना निकलता है, गंदगी निकलती है, सूती कपड़े उसको सोख लेते हैं और शरीर को नुकसान नहीं पहुँचाते हैं। जितने भी रेशमी, टेरिकॉट, टेरालीन के कपड़े हैं उनमें पसीना सोखने की शक्ति नहीं है। इसलिए अन्दर ही अन्दर वे चर्म रोग का कारण बनते हैं।

आजकल सौन्दर्य प्रसाधन क्रीम, पाउडर, शैम्पू, लिपिस्टिक भी चर्म रोगों का कारण बने हुए हैं। सरकारी आंकड़े बताते हैं कि अधिक मात्रा में सुगन्धित वस्तुओं का प्रयोग करने से चर्म रोग पैदा होते हैं। आज कम उम्र में ही बाल सफेद हो रहे हैं। अधिक रसायन युक्त साबुन एवं शैम्पू का प्रयोग करने से यह समस्या उत्पन्न हो रही है। कई प्रकार के शैम्पू में अण्डे का प्रयोग किया जाता है जो कि चर्म रोग और सफेद बालों का कारण बनते हैं।

अगर हमारा खान-पान, रहन-सहन एवं आचरण ठीक नहीं हुआ तो स्थिति और भी बिगड़ सकती है। जब खान-पान, रहन-सहन दूषित है तो तीर्थ क्षेत्रों में भी हमें शांति नहीं मिल सकती है। हमें इस बात का ख्याल ही नहीं है कि हमें क्या करना है और क्या नहीं? इसलिये कहा जाता है-

आयु का कण क्षण-क्षण बीते, ज्यों मिटे बुलबुला पानी का।
तन-धन-वैभव सब नश्वर हैं, यौवन रूप जवानी का।।
दुनिया की इस मृगतृष्णा में, मानव आत्मधर्म खोवे।
मैं क्या हूँ, क्या करना मुझको, करता क्या यह न सोचे।।

इसी अज्ञान एवं अविवेक के सहारे मुनष्य पाश्चात्य संस्कृति का अन्धानुकरण कर रहा है। जब मन और बुद्धि विकारयुक्त होती है तो परिणामों की निर्मलता नहीं होती, तब अध्यात्म की बात समझ में नहीं आती है। आपने कभी सोचा है कि अण्डा मिश्रित क्रीम एवं शैम्पू लगाकर तथा रेशमी वस्त्र पहनकर प्रभु के मन्दिर में, चन्दाबाबा के मंदिर में जाने से क्या भगवान प्रसन्न हो जाएंगे? ऐसा कभी सम्भव नहीं।

यह समस्त बातें हमारे जीवन की व्यवहारिकता को दर्शाती हैं। सुबह से शाम तक टूथपेस्ट से लेकर फास्ट फूड तक हम किसी न किसी रूप में किसी न किसी जीव के खून एवं हाड़-मांस का भक्षण कर रहे हैं। उसका परिणाम क्या मिला-अनेक रोग, समस्यायें एवं तनाव। मंदिर जाने की, जिनेन्द्र

प्रभु के दर्शन की फुर्सत तो हमें तब मिले, जब हमें अस्पताल से छुट्टी मिल पाए। सारा समय तो आजकल अस्पतालों में जाता है। इसलिये हम अत्यन्त अशांत, परेशान एवं दुःखी हैं।

यदि आप चाहते हैं कि हमारा जीवन शांत एवं सुखी हो, तनाव मुक्त हो तो हमें अपने जीवन में, व्यवहार में, आचरण में सादगी लानी होगी। धूम्रपान एवं मदिरापान से आपका माइन्ड फ्रैश नहीं होगा। इसके लिए देव दर्शन एवं आत्म चिंतन की आवश्यकता है। फिर देखिए आपको कितनी आत्मिक शांति का अनुभव होगा। आप किसी क्लब में पहुँच जाएँ या टी० वी० के पास पहुँचकर टी० वी० देखने लगें तो वह आपको अधिक तनाव देगा, आपकी मांसपेशियों को अधिक व्यायाम करना पड़ेगा। दूसरी ओर यदि आप वीतराग शान्तमूर्ति जिनेन्द्र देव की प्रतिमा के सामने पहुँचते हैं तो आपको कितनी आत्मिक शांति का अनुभव होता है यह आप स्वयं जानते हैं। लेकिन वहाँ तक जाने का आप समय ही नहीं निकालते हो। यह अध्यात्म/धर्मायतन/जिन प्रतिमायें आपके माइन्ड फ्रेश करने एवं आत्मिक शांति के लिए टॉनिक की तरह हैं।

आज जीवन में क्रूरता अधिक समाहित हो गई है। नव भारत टाइम्स की एक कटिंग हमारे सामने आई। एक कुलपति के लड़के का प्रसंग था। उस लड़के का एक-एक अंग काटकर नदी में बहा दिया गया। ऐसी क्रूरतापूर्ण एवं हृदयविदारक घटनाएँ पढ़कर भी हमारे रोम रोमांचित नहीं होते। क्रूरता करने वाले भी कभी शांति से नहीं रह पाते हैं। उनके हृदय भी अत्यन्त अशांत होते हैं। जबकि करूणा, दया, वात्सल्य आदि भावनायें हमारे मनोबल को ऊँचा बनाती है।

जिस समय श्रीपाल को गुणमाला के पिता के सामने भाण कहा गया तो उन्हें आवेश आ गया। सूली का आदेश दे दिया गया। जब रयणमंजूषा को बुलाया गया तो उसके राजपुत्र होने की बात खुली। वह सेठ की चाल थी। जब सेठ की बात खुली तो सारे भाणों को मारने का आदेश दे दिया गया। श्रीपाल के मन में करूणा थी। उन्होंने राजा से निवेदन किया कि यह सब गरीब लोग हैं। इनको सजा देने की बजाय ऐसा काम करें कि इनकी गरीबी दूर हो जाय। इनको फिर कभी लालच में आकर ऐसा काम न करना पड़े। उनको इनाम दिलवाया, रोजी रोटी दिलवाई और जीवन दान दिलाया।

बन्धुओं! यह है उस तत्त्वज्ञानी, सम्यग्दृष्टि मुमुक्षु का जीवन। एक ओर आपका जीवन है, जरा सा प्रतिकूल प्रसंग आया और आवेश आ जाता है। आवेश में, जोश में जाने क्या-क्या अनर्थ कर बैठते हैं। जितनी अधिक क्रूरता की भावना जिसमें होगी, वह उतना ही शरीर से रोगी मिलेगा, मन से रोगी मिलेगा। ऐसे अनेक वैज्ञानिक प्रयोग चल रहे हैं कि जिस व्यक्ति में जितनी अधिक सरलता, सहजता होगी, सेवा की भावना होगी उतना ही मन शांति को प्राप्त होता है। संत तुलसीदास ने इसी प्रसंग का वर्णन करते हुए कहा है–

दया धर्म का मूल है, पाप मूल अभिमान।
तुलसी दया न छोडिए, जब तक घट में प्राण।।

सारे धर्मों का मूल दया है। यदि जीवन में दया को स्थान मिल जाय तो चतुर्गति से जीवन को छुटकारा मिल सकता है। दूसरों के प्रति दया हो तो हमें अपने प्रति भी दया उत्पन्न होती है और यदि दूसरों के प्रति क्रूरता है तो हम अपनी आत्मा से क्या प्रीति करेंगे? इसीलिए कहा जाता है–

विधवा दीन अनाथों के हित, जिसका काँपा हिया नहीं,
ऐसा प्राणी भार धरणि का, ही बस समझा जाता है।

दया रहित करूणा, मैत्री, वात्सल्य रहित जीवन इस पृथ्वी पर भार ही है। ऐसा जीवन जीने से जीवन की सार्थकता नहीं है। मेरी तो बस जिनेन्द्र प्रभु से एक ही प्रार्थना है कि–

मन-उपवन की फुलवारी में, सद्भावों के सुमन खिला दे।
जितने कलुषित भाव हृदय में, उनकी मिलकर चिता जला दे।।

जब हृदय में सद्भावों के सुमन खिल जायेंगे तो हमारा घर, परिवार, समाज एवं राष्ट्र इससे महक उठेगा और तभी हमारा इस पृथ्वी पर जन्म लेना सार्थक होगा।

अतिथि को देवता के समान पूजा जाता था। पहले माताओं में बहुत सत्कार की भावना थी। मंदिर में माली से कह देती थी कि यदि कोई दर्शन करने आये तो बिना पूछे मेरे घर भोजन के लिए भेज देना। मंदिर से यदि पति अकेला घर पहुँचता तो पत्नी झगड़ा करती कि भोजन के लिए किसी अतिथि को क्यों नहीं लाए। किन्तु आज स्थिति बिल्कुल विपरीत है। यदि

पतिदेव किसी को लेकर पहुँच जाएँ तो पत्नी का और बच्चों का पारा हाई हो जाता है। जीवन में बहुत अधिक परिवर्तन आ गया है।

अतिथि सत्कार के रूप में हिन्दुओं में भोग लगाने की परम्परा है। हलवाई कढ़ाई चढ़ाने के बाद पहली वस्तु अग्नि को समर्पित करता है या दान करता है। घरों में पहली रोटी गाय के लिए निकालने की परम्परा है। अगर बाँट-बाँटकर खाओगे तो अंग लगेगा। सारा इकठ्ठा खा जाओगे तो हजम नहीं होगा। घर में एक खरबूजा आया। पहले एक-एक फाँक बाँटकर खाते थे। उसका अपना एक अलग आनन्द था। आजकल तो सारे बच्चे जब सो जाते हैं, तब रात को डिब्बा खुलता है।

यह विचारणीय है कि पहले हम और हमारी संस्कृति कैसी थी और अब हम कहाँ जा रहे हैं? इसी विडम्बना को देखते हुए राष्ट्रकवि मैथिली शरण गुप्त ने कहा है–

हम कौन थे, क्या हो गए, और क्या होंगे अभी।
आओ विचारें आज मिलकर, ये समस्यायें सभी।।

निश्चित रूप से यह विचारणीय प्रश्न है। ईमान की रोटी खाना आज आसान नहीं है। सम्यग्दृष्टि तो ईमान की रोटी खाता है। धर्मात्मा का जीवन मानवीयता से युक्त होता है। ईमान की रोटी खाने वाला दूसरों को खिलाकर, दूसरों की सेवा कर बड़ा हर्षित होता है। इसीलिए तो सोलह कारण भावना में कहा है–

दान देय मन हरष विशेखे, इह भव जस परभव सुख पेखे।

यह दान की महिमा है। यह दान व्यर्थ की चीज नहीं है। कुए से पानी नहीं निकाला तो सड़ जाएगा। सर्वार्थसिद्धि (612) में कहा गया है कि–

''परानुग्रह बुद्ध्या स्ववित्त परित्यागो दानम्''

अर्थात् दूसरे का उपकार हो, इस बुद्धि से अपनी वस्तु का अर्पण करना दान है। दान देकर गरीब व्यक्ति भी ऐश्वर्यवान होता है। पदमपुराण में कहा है–

मानवा ये सदा दानं दत्वा दत्वा दरिद्रति।
दरिद्रास्ते न विज्ञेयाः नरलोके महेश्वराः।।

अर्थात् जो व्यक्ति सदा दे देकर द्ररिद्र होते हैं, वे वास्तव में दरिद्र नहीं। वे तो नरलोक में महेश्वर/ऐश्वर्यसम्पन्न होते हैं।

दान किया हुआ पैसा ही आपका सही बैंक बेलेन्स है। बाकी सब तो चला जाता है। हर व्यक्ति को अपनी आमदनी का दस प्रतिशत दान में निकालना चाहिए। नहीं तो घर में चोरी होगी, डकैती होगी। अपनी इच्छा से दोगे तो पुण्य का संचय होगा। नहीं तो इसी धरा पर पड़ा रह जायेगा। पद्मनन्दि पंचविंशतिका (2/21) में कहा गया है कि–

''जिसका धन दान के लिए नहीं, शरीर व्रत के लिए नहीं है तथा ज्ञान आत्यन्तिक उपशम के लिए नहीं है, उसका जन्म मात्र मरने के लिए ही है और संसार में दुःख सहने और मरकर पुनः जन्म लेने आदि बन्धन के लिए है।''

दान धर्म के चार पदों में से एक है। दान, दरिद्रता-क्लेश का नाशक है, लोकप्रियता देता है। दान, यश आदि का संवर्धन करता है।

सम्पन्नता के बाद भी उदारता हो यह आवश्यक नहीं है। पैसा धन, वैभव होना अलग बात है और उदारता होना अलग बात है। लेकिन जहाँ दोनों गुणों का सामंजस्य हो जाए, वह जीवन सफल हो जाता है। ईमानदारी व्यक्ति का आभूषण है जिससे कि हमें यश के साथ ही आत्मिक शांति का भी अनुभव होता है। इसलिए कहा जाता है–

गर नीयत में ईमान-ईमान होता।
गुनाह और सजा की क्या विसात।
धरती स्वर्ग, इंसान भगवान होता।।

जब ईमान एवं परिश्रम की कमाई घर में आती है तो घर में शांति एवं नैतिकता का साम्राज्य होता है। किन्तु जब चोरी, अनीति, अनाचार, भ्रष्टाचार की कमाई आयेगी तो घर में अशांति, गृहक्लेश का वातावरण बनता है। हम अपने ही कर्मों से यहीं स्वर्ग और नरक का निर्माण कर लेते हैं। अधार्मिकता का प्रतिफल बड़ा कष्टमय होता है। हमें इन चीजों पर जरा विवेक से कार्य लेना चाहिए क्योंकि हमारा अनुभव कहता है कि–

रेत की दीवार ज्यादा नहीं चलती।
बिना पेट्रोल के गाड़ी भी नहीं चलती।।
पत्थर की नाव तैरती नहीं देखी।
पाप की कमाई ठहरती नहीं देखी।।

यह अनीति का ही प्रतिफल है कि परिवार में शांति नहीं है, दाम्पत्य जीवन में शांति नहीं है। घर में सभी सामान भरे पड़े हैं, रंगीन टी० वी०, वी० सी० आर०, कूलर, फ्रिज, मोटर-गाड़ियाँ, नौकर-चाकर सभी भौतिकता के साधन सुलभ हैं। लेकिन बिना आध्यात्मिकता के मन में सुखशांति नहीं है। ये भौतिक सामान पैसे से खरीदे जा सकते हैं। लेकिन मन की शांति पैसे से नहीं खरीदी जा सकती है। अगर भौतिकता के साथ ही आध्यात्मिकता भी जुड़ जाए, दोनों का सामंजस्य हो जाए तो उन साधनों का भी विवेकपूर्वक उपयोग कर व्यक्ति सुख शांति प्राप्त कर सकता है।

मिथ्यादृष्टि जीव मानते हैं कि गृहस्थ की शोभा राग-रंग, माया और काया से है परन्तु ऐसा नहीं है। शोभा त्याग, संयम और साधन से है। संत शुद्धोपयोग की साधना के माध्यम से, वीतराग विज्ञान के माध्यम से स्व-पर भेद-विज्ञान के माध्यम से विकारी प्रवृत्तियों का त्याग करते हुए आत्मा में रत रहते हैं तथा संसारी प्राणियों को धर्म-मार्ग का, मोक्ष-मार्ग का उपदेश देते हैं। हमारे धर्माचार्यों ने ऐसी-ऐसी धर्म की दवाईयाँ बनाई है कि फ्री में ही आप स्वस्थ जीवन जी सकते हैं। जो दया का कैप्सूल लेते हैं, उन्हें रक्तचाप की बीमारी नहीं हो पाती। जो क्षमा की टेबलेट लेते हैं, उस परिवार में कभी बिखराव नहीं होता, कभी भी केंसर आदि शारीरिक बीमारियाँ नहीं होती हैं। धर्म एक स्वस्थ एवं उत्तम विचारों की औषधि का भण्डार है। हम एक भजन में पढ़ते हैं–

ये नर पीलो दशधर्म का काढ़ा, सभी रोग मिट जायेंगे।

गजकुमार मुनिराज का प्रसंग आता है कि वे समवशरण में गए तो उनको वैराग्य हो गया। उनका जो भावी श्वसुर था, उसको आक्रोश आ गया कि साधु ही बनना था तो मेरी बेटी से सगाई क्यों की। उसने आवेश में जलती अंगीठी उसके सिर पर रख दी। गजकुमार मुनिराज राजपुत्र थे। उन्हें वास्तविक भेद-विज्ञान हुआ। शरीर अलग है, आत्मा अलग है, मेरी आत्मा को कोई काट नहीं सकता, धन्यभाग्य मेरी आत्मा को कोई जला नहीं सकता जो आठों कर्मों को काटकर मुझे केवलज्ञान प्राप्ति की तैयारी का मौका मिल रहा है।

प्रतिकूल निमित्त के मिलने पर भी यदि तनाव नहीं होता है, अशांति नहीं

होती है तो हमारा स्वाध्याय, पूजा-पाठ सार्थक है, अन्यथा सब बेकार है। असहिष्णुता सारे रोगों की जननी है। आप दशलक्षण पूजन में पढ़ते हैं–

पीडैं दुष्ट अनेक, बांध मारि बहुविध करें।
धरिए छिमा विवेक, कोप न कीजे पीतमा।।

कोई किसी का अच्छा-बुरा नहीं करता है। जो दूसरों को गिराने की सोचता है, वह स्वयं गिरता है। अगर दूसरों की भलाई, उत्थान सोचते हो तो आपका उत्थान जरूर होगा। अगर बुरा समय आता है तो ज्ञानी सोचता है कि यह मेरे पूर्व जन्मों का, कर्मों का फल है और उनको शांत भाव से सहन करते हुए कर्मों की निर्जरा करता है। पुण्य कर्म का उदय है तो कोई बाल बाँका नहीं कर सकता और यदि पाप कर्म का उदय है तो कोई वचा नहीं सकता। तात्पर्य यह है कि शांति के लिए तो उपाय है। बस, मन में यह सोच लीजिए कि–

जे करम पूरब किए खोटे, सहे क्यों नहिं जीयरा।
अति क्रोध अगनि बुझाय प्राणी, साम्य जल ले सीयरा।।

समता रूपी जल के द्वारा ही पूर्व कर्मों के उदय को शीतल किया जा सकता है। विनय से ही जीवन में शांति का उद्भव होता है। जीवन में संयम को धारण कर अध्यात्म मार्ग पर चल कर अपने जीवन को कृतार्थ करें। संयम मानव जीवन की सार्थकता का सूत्र है। यह वह मशाल है जो जीवन के कोने-कोने को जगमगा देती है। यह भारतीय संस्कृति की आत्मा है। संयम से पशु में भी पूज्यता आ जाती है, दैत्य में भी देवता का वास हो जाता है और किंकर भी तीर्थंकर बन जाता है। हमें भी इसी मार्ग का अनुकरण कर तीर्थंकर बनने का प्रयास करना चाहिए।

"अहिंसा विश्वधर्म की जय"

卐 ———— 卐 ———— 卐

लेश्या : व्यक्तित्त्व का दर्पण

नमः श्री वर्धमानाय निर्धूत कलिलात्मने।
सालोकानां त्रिलोकानां यद्विद्या दर्पणायते।।

साधक एवं स्वयं को जानने के लिए भगवान महावीर ने एक महत्वपूर्ण नक्शा प्रस्तुत किया है, वह नक्शा है लेश्या का। हम उस जगत में जीते हैं जिसमें सूर्योदय से सूर्यास्त तक विरोधाभास चलते रहते हैं। एक भी क्षण ऐसा उपलब्ध नहीं होता है, जिसमें विरोधाभास न हो। एक भी देश ऐसा उपलब्ध नहीं होता, जिसमें विरोधाभास न हो। एक भी व्यक्ति ऐसा उपलब्ध नहीं होता है, जिसमें विरोधाभास न हो। कोई भी व्यक्ति विरोधी बात कहता है, वह बात अखरती है। किन्तु हम यह न भूलें कि हमारा समूचा जीवन विरोधाभासों से भरा पड़ा है। एक भी आदमी ऐसा नहीं जो सोलह आना स्वस्थ हो और एक भी आदमी ऐसा नहीं जो सोलह आना बीमार हो। न जाने इस जगत् का क्या नियम है हर क्षण, हर भाग में विरोधाभास उपलब्ध है। इन विरोधाभासों की स्थिति में महावीर स्वामी ने अनेकान्तवाद का प्रतिपादन किया। उन्होंने कहा– "हम विरोधाभासों को नहीं मिटा सकते। किसी की शक्ति नहीं कि वह उन्हें मिटा दे। हम केवल अपनी दृष्टि में संतुलन ला सकते हैं, समन्वय ला सकते हैं, सापेक्षता ला सकते हैं, और विरोधों में अविरोध देख सकते हैं।"

लेश्या का अर्थ है–चित्त की वृत्ति को पहचानना। हमारे मन में सतत् विचार उठते रहते हैं। उन विचारों का एक अत्यन्त सूक्ष्म वलय हमारे जीवन के आसपास चहुँ ओर बन जाता है। चित्त में, चेतना की किसी भी गहराई में उठने वाला विचार या विचारों की तरंगें, वे फिर भली हों अथवा बुरी, आप उन्हें बोलकर चाहे व्यक्त न करें, लेकिन वे कैमरे में कैद हो जाती हैं। इसे विज्ञान ने आभामण्डल कहा है। भगवान महावीर ने इन्हीं सूक्ष्मतम विचारों की तरंगों को लेश्या की संज्ञा दी है। लेश्या की परिभाषा करते हुए आचार्य नेमिचन्द्र स्वामी ने कहा है–

"कषाय कषायानुरंजित प्रवृत्तिः"

अर्थात् कषाय से अनुरंजित जो योगों की प्रवृत्ति है वह लेश्या कहलाती है। लेश्या का सम्बन्ध दो आंतरिक शक्तियों से है– कषाय और योग। एक मानस् और दूसरा भावना।

ऑकल्ट साइंस के पुरस्कर्ताओं ने दो प्रकार की ओराओं का प्रतिपादन किया है–

(1) इमोसनल ओरा ''भावनात्मक आभामण्डल''

(2) मेण्टल ओरा ''मानसिक आभामण्डल''

कषाय का स्रोत जितना तीव्र होता है, हमारी शक्तियाँ उतनी ही क्षीण होती हैं और तैजस शरीर दुर्बल बनता चला जाता है। चंचलता अधिक होती है, आभा मण्डल क्षीण होता जाता है। क्योंकि मन जितना सक्रिय रहेगा, वाणी जितनी सक्रिय रहेगी और शरीर जितना सक्रिय रहेगा, उतनी ही शक्ति का व्यय अधिक होगा। जब शक्ति का व्यय अधिक होता है, तब उसका संग्रह नहीं हो सकता है। शक्ति के अतिरिक्त संग्रह के बिना नयी दिशाओं का उद्घाटन नहीं हो सकता है, साधना के नये आयाम नहीं खुल सकते हैं। इसलिए शक्ति के अतिरिक्त व्यय को रोका जाना चाहिए।

बन्धुओ! हमारा सांसारिक जीवन नाना प्रकार के संकल्प और विकल्पों में व्यतीत होता रहता है। अच्छे और बुरे विचार हमारे मानस में उठते रहते हैं। जीवन में यह देखा जाता है कि एक क्षण पहले जिससे प्रीति थी, जिसे अपना समझा जाता था, जिसके प्रति हम समर्पित थे, दूसरे ही क्षण उसके प्रति क्रूरता, द्वेष, शत्रुता की भावना हमारे मन में बस जाती है। जिस पड़ोसी से शत्रुता चल रही थी, कुछ दिनों के बाद उससे मित्रता हो जाती है। कभी-कभी किसी को देखकर अच्छे भाव बनते हैं तो कभी-कभी किसी को देखकर बुरे भाव बनते हैं। यह सभी लेश्या के परिणाम स्वरूप होता है।

लेश्या दो प्रकार की है– द्रव्य लेश्या और भाव लेश्या। द्रव्य लेश्या ऊपर से देखने में आती है, आपके रंग को देखकर पता लग जाता है और यह जीवन पर्यन्त बनी रहती है। भाव लेश्या मन में होती है। यह अन्तर्मुहूर्त में बदल जाती है।

छह प्रकार की प्रक्रियाओं के माध्यम से एक संसारी प्राणी के जीवन का चिंतन हमारे आचार्यों ने खींचा, जिन्हें तीन शुभ लेश्या और तीन अशुभ

लेश्या कहा है। तीन शूल हैं तो तीन फूल हैं। कृष्ण, नील और कापोत लेश्या ह्रासता, पतन एवं दुर्गति के कारण हैं। इसीलिए इन्हें अशुभ लेश्या कहा है। पीत, पद्म, शुक्ल लेश्या उन्नति, उत्कर्ष एवं ऊर्ध्वगति के कारण हैं। इसलिये इनको शुभ लेश्या कहते हैं।

कषाय की तरंगे और कषाय की शुद्धि होने पर आने वाली चैतन्य की तरंगें- इन सब तरंगों को भाव के साँचे में ढालना, यह इसका काम है। मन, वचन और काय की प्रवृत्ति के द्वारा जो कुछ बाहर से आता है, वह कच्चा माल होता है। लेश्या जिसे लेती है उसे कषाय तक पहुँचा देती है। वह कच्चा माल कषाय से संस्थान तक पहुँच जाता है। यह लेश्या का काम है। फिर भीतर से वह कच्चा माल पक कर आता है। जो कर्म जाता है वह फिर विपाक होता आता है। भीतरी स्त्राव से जो रसायन बनकर आता है, उसे लेश्या फिर अध्यवसाय से लेकर हमारे स्थूल तन्त्र तक मस्तिष्क और अन्तः स्त्रावी ग्रन्थियों तक पहुँचा देती है।

जो भी माल आता है, वह भी रंगीन आता है और भीतर जाता है वह भी रंगीन जाता है। कषाय शब्द का अर्थ ही- रंगा हुआ है। वहाँ जो कुछ भी जाता है, आता है सब रंगीन है। जितने कर्म के परमाणु हैं वे सारे के सारे रंग के परमाणु हैं। एक आदमी हिंसा का विचार करता है तो काले रंग के परमाणुओं को आकर्षित करता है। एक आदमी असत्य बोलता है तो काले रंग के परमाणुओं को आकर्षित करता है। एक आदमी क्रोध करता है तो मलिन लाल रंग के परमाणु आकर्षित करता है।

आज के मनोवैज्ञानिकों एवं वैज्ञानिकों ने भी यह खोज की है कि मस्तिष्क को सबसे अधिक प्रभावित करने वाला है रंग। रंग हमारे समूचे व्यक्तित्त्व को प्रभावित करता है।

लेश्याओं के छह रंग हैं। उनमें तीन खराब हैं और तीन अच्छे। तीन प्रशस्त रंग हैं और तीन अप्रशस्त रंग। काला, नीला और कापोत ये खराब ही नहीं होते। इनके हम दो भेद करते हैं- प्रकाश के रंग, अन्धकार के रंग। अन्धकार का काला, नीला और कापोत रंग खराब होता है और प्रकाश का काला, नीला और कापोत रंग अच्छा होता है। इसी प्रकार अंधकार का लाल, पीला और श्वेत रंग खराब होता है। प्रकाश का लाल, पीला, और श्वेत रंग अच्छा होता है।

क्रोध, मान, माया, लोभ यह चार कषायें हैं जो निरन्तर परिणामों को बिगाड़ती रहती हैं। ऐसे भी प्राणी हैं जो संसार में रहते हुए कषाय नहीं करते हैं। दसवें गुण स्थान तक यह कषाय की धारा चलती है। दसवें गुण-स्थान से आगे ईर्यापथ आस्रव है। वहाँ स्थिति और अनुभाग बंध नहीं होता है।

मनोयोग, वचनयोग और काययोग यह तीन योग माने गए हैं। इन योगों के माध्यम से प्राणी निरन्तर यात्रा करता रहता है। जीवन को अशांत, आकुलित-व्याकुलित बनाता रहता है। लेश्या का लक्षण बताते हुए नेमिचन्द्र स्वामी ने कहा है कि

लिंपई अप्पीकीरई एदीए णियअप्पुण्पुण्णं च।
जीवोत्ति होदि लेस्सा लेस्सागुणजाणयक्खादा॥

जो पुण्य और पाप से प्राणियों का लिम्पन करती है, लेप करती है, वह लेश्या कहलाती है, जिसके द्वारा यह जीव निरन्तर पुण्य पाप में लिप्त होता रहता है। शुभोपयोग एवं अशुभोपयोग से तो हम बहुत परिचित हैं। किन्तु एक ऐसा उपयोग है जो न शुभ है न अशुभ है जिसे शुद्धोपयोग के नाम से जाना जाता है और शुद्धोपयोग का फल केवल ज्ञान कहा गया है। हम लोग निरन्तर कभी पुण्यरूप तो कभी पापरूप प्रक्रियाओं से गुजरते रहते हैं। ये दोनों प्रक्रियायें जब तक चलती रहेंगी तब तक संसार का अंत नहीं हो सकेगा।

अच्छे और बुरे जो भाव हमारे द्वारा चलते हैं, इसी को लेश्या कहा है। कृष्ण लेश्या वाले व्यक्ति के अन्दर कलुषता की भावना होती है। कषाय उसकी बड़ी तीव्र होती है। वह क्रोधी होता हैं। बैर के संस्कार उसके जीवन में बड़े प्रबल होते हैं। कोई बात हो जाये तो ऐसी कषाय बाँधता है कि एक भव का प्रसंग कई भवों तक चलता रहता है। लेश्या दृष्टि के विषय में सम्यग्दृष्टि को छहों लेश्या हो सकती हैं और मिथ्यादृष्टि को भी छहों लेश्यायें हो सकती हैं।

कषायों की तीव्रता-मन्दता की भी नाना अवस्थायें होती हैं। एक तो बाहर का रंग होता है। एक भावों का रंग होता है। बाहर तो हम गोरे हैं लेकिन अन्तरंग में हमारे परिणाम क्रूरता, ईर्ष्या, द्वेष, बदले की भावना, प्रतिशोध की भावना के हैं। ईर्ष्या आदि जितने अशुभ परिणाम हैं, पाप परिणाम हैं, यह

समस्त हमारे भावों को काला बनाते हैं। कृष्ण लेश्या वाला आर्त-रौद्र ध्यानी होता हैं। आर्तध्यान, रोंद्रध्यान, धर्मध्यान और शुक्लध्यान; ये चार प्रकार के ध्यान कहे गये हैं। मुनिराज, साधु, संत इतना ध्यान नहीं कर पाते हैं जितना सामान्य लोग करते हैं। आप कहेंगे यह तो पहली बार सुना है। हम तो यही जानते हैं कि मुनिराज अधिक ध्यान करते हैं। ज्ञानार्णवकार ने तो यहाँ तक कहा है कि आकाश में फूल तो उग सकते हैं, सूर्य पूर्व की अपेक्षा पश्चिम से उग सकता है, लेकिन गृहस्थ के उत्कृष्ट ध्यान नहीं होता है। आप कहते हो कि गृहस्थ के अधिक ध्यान होता है।

बन्धुओं! मुनिराज का ध्यान तो केवलज्ञान का कारण बन जाता है। लेकिन आपका जो ध्यान है वह खोटा ध्यान है। इसलिये उसे ध्यान नहीं माना है। गृहस्थों के भी ध्यान संभव है। लेकिन जो उत्कृष्ट ध्यान है, वह गृहस्थों के संभव नहीं है। आप लोग आर्त और रौद्र ध्यान करने में चतुर हैं। दिन-रात ताना-बाना बुनने में लगे रहते हैं। इसलिए मैंने कहा कि साधु सन्त उतना ध्यान नहीं करते जितना आप लोग करते हैं। आप पूजन में पढ़ते हैं-

दिन रात शुभाशुभ भावों से, मेरा व्यापार चला करता।
मानस वाणी और काया से आस्रव का द्वार खुला रहता।।

संसारी प्राणी दिन-रात राग-द्वेष-मोह के द्वारा आस्त्रव और बंध की प्रणाली को निरन्तर हरी-भरी बनाता रहता है। यह कृष्ण, नील और कापोत लेश्या आपके शरीर को भी गन्दा करती है। आपके शरीर में जो दुर्भावना है उनसे कोशिकाएँ, धमनियाँ कमजोर पड़ती हैं। डाक्टरों का कहना है कि जब मांस-पेशियों धमनियों पर दबाव पड़ता है तो उतनी ही ज्यादा बुढ़ापे की तैयारी होती है। शरीर के लचीलेपन का अभाव होना ही बुढ़ापा है।

आज पन्द्रह वर्ष का युवक वृद्ध कहलाता है और 80-90 वर्ष का वृद्ध जवान कहलाता है। आप कहेंगे कि आप यह क्या कह रहे हैं। युवक वह कहलाता है जिसके जीवन में ताजगी है, उत्साह है, जोश है। वृद्ध वह है जो दिन-रात तनावों की ज्वाला में जलता रहता है। आप कितना भी पौष्टिक भोजन करें लेकिन यदि चित्त की प्रसन्नता नहीं है तो सारे विटामिन्स आपके बेकार हो जाते हैं। इसलिए आज के 20-25 वर्ष के युवक-युवती भी वृद्ध जैसे दिखाई देते हैं। एक छत की सीढ़ियाँ चढ़ जाएँ तो श्वांस धौकनी जैसी

चलने लगती है। शरीर में शक्ति नहीं है। इतना सोचते-विचारते हैं कि शरीर की शक्ति उसी में क्षीण हो जाती है।

जिसके शरीर में शक्ति है वह वृद्ध भी आज युवक जैसी ताजगी युक्त दिखता है। गुस्सा मत करो, क्रोध मत करो, अहंकार मत करो। जो जितना तनाव करता है, उसका बुढ़ापा भी उतनी ही जल्दी आ जाता है। जिनको अपनी जवानी प्रिय है, उन्हें अपनी कषायों का वमन करना पड़ेगा। जो जितना पाप-कर्म करता है, उसका बुढ़ापा जल्दी आ जाता है। जो अपने को पाप कर्म से अलग रखेगा, वही युवा रह पायेगा। शुक्ल लेश्या हमें जवान बनाती है, तो कृष्ण लेश्या हमें वृद्धावस्था की ओर ले जाती है।

बन्धुओं! आर्तध्यान की जो दशाएँ हैं, उसके चार भेद हैं- इष्ट वियोग, अनिष्ट संयोग, पीड़ा-चिंतन और निदान-बंध। हर गृहस्थ ने आर्त-रौद्र ध्यान में पी-एच०डी० की है। आप लोग उस कार्य से बहुत परिचित हैं। आपकी यात्रा निरन्तर इन्हीं माध्यम से चलती रहती है। गर्मी की छुट्टी में जब बेटी मायके आती है, और जब लौटकर जाती है तो इष्ट का संयोग और फिर वियोग होता है, तब २-४ दिन तक नींद नहीं आती है। यदि कन्या को थोड़ा सा दु:ख है तो आर्तध्यान को आप जिन्दगी भर के लिए खरीद लेते हैं। जब कष्ट का विकल्प आता है तो बार-बार वही संकल्प होते रहते हैं। जिसके पास जितनी अधिक भोगोपभोग की सामग्री रहती है, उतना ही अधिक उसका आर्त-रौद्र ध्यान चलता रहता है।

आप जिसको चाहते नहीं, अगर उसका संयोग हो जाय तो आप आकुलित-व्याकुलित हो जाते हैं। भौजाई अगर ननद को चाहती नहीं है और अगर वह घर में आ जाती है तो अनिष्ट का संयोग हो जाता है। ननद के आने से सास-ससुर, देवर सब उसी के इर्द-गिर्द घूमते रहते हैं, माल ढोकर भी ले जायेगी। बस इसी विकल्प के चलते आर्त-ध्यान बढ़ता रहता है। नौकरीपेशा करने वाले बेटों के प्रति माँ-बाप का प्यार अधिक होता है। वह कुछ दिनों के लिए ही आता है। घर में रहने वाले बहू-बेटे इस बात को सहन नहीं कर पाते हैं। कृष्ण लेश्या वाले के परिणाम इसी तरह के चलते रहते हैं। लेकिन जब व्यक्ति को इस बात का अहसास होता है कि मैं

अकेला आया हूँ, अकेला जाऊँगा तो फिर इस प्रकार के विकल्प नहीं बनते। हमें अपने जीवन में विचारों की विशालता लानी चाहिए, नहीं तो हमारा जीवन नारकीय बन जाता है।

नारकी जीव एक क्षण के लिए भी विश्रांति नहीं लेते। मच्छर बड़े परिश्रमी एवं पुरुषार्थी होते हैं। उन्हें आप कितनी भी बार भगाओ लेकिन वह लगातार आपके पास मंडराते रहते हैं। आप तो थोड़ा बहुत काम करके थक जाते हैं, टूट जाते हैं, लेकिन वे कितने ही परेशान हो जाएँ, अपना धैर्य नहीं छोड़ते। कृष्ण लेश्या वाला प्रमादी होता है, और जब वह आलसी होता है तो उसका विकास एवं उन्नति नहीं हो पाती।

पुण्य कर्म का उदय हमेशा ही रहने वाला नहीं है, तो पाप कर्म का उदय भी हमेशा नहीं रहता। यह धूप और छाया के समान है। अगर उजेला पखवाड़ा है तो अंधेरा पखवाड़ा भी आयेगा। कृष्ण पक्ष है, तो शुक्ल पक्ष भी आयेगा। यह संसार का चक्र है–

कर्म असाता के आने पर, प्राणी दु:ख को पाता है।
साता कर्म विपाक प्राप्त कर, जीव सुखी हो जाता है।।
सुख दु:ख तो जीवन का क्रम है, घटी यंत्रवत् जीवन चक्र।
इनसे कोई बच नहीं पाया, नर-नरेश हो या सुर-चक्र।।

लेकिन कृष्ण लेश्या वाला व्यक्ति निरन्तर शोक करता रहता है। न खाने में, न पीने में मन लगता है। दिन-रात संक्लेश परिणाम में रहता है।

वर्णी जी ज्वर को मित्र कहते थे। रोगादि के विषय में अधिक नहीं सोचना चाहिए, नहीं तो वह और अधिक बढ़ता है। शरीर में थोड़ी सी पीड़ा होते ही आप बैचेन हो जाते हैं, चिंतित रहते हैं। वही आर्तध्यान और कृष्ण लेश्या है। अत: हमें पीड़ा चिंतन ध्यान नहीं करना चाहिए। साता-असाता के उदय में जो समता रखता है, उसको अपूर्व शांति का अनुभव होता है।

मुनिराज को कितना ही रोग आ जाये। वह नहीं कहेंगे कि भैया हमारा इलाज करा दो। वह तो खुला चैलेंज देते हैं कि जिसको जिस तरह से आना हो वह आ जाय। सबको निमंत्रण देते हैं। जितना आप विपत्तियों से डरेंगे उतनी ही वे आपका पीछा करेंगी।

कृष्ण लेश्या वाले व्यक्ति अपने भावों को खोटा बनाते रहते हैं। आज के तनावयुक्त जीवन का कारण अधिक चिन्तामय रहना ही है। चिन्ता रूपी कैंसर का इलाज व्यस्त जीवन ही है। व्यस्त जीवन जीने वालों पर कृष्ण लेश्या का अधिकार नहीं होता है। इस लेश्या वाला व्यक्ति जरा-जरा सी बात पर आवेश में आ जाता है। जीवन में कुछ न कुछ प्रतिकूलताऐं तो होती ही हैं। अगर सभी अनुकूलताएँ इस संसार में मिलने लगें तो मोक्षमहल में फिर ताला डलवाना पड़ेगा। प्रतिकूलता में ही महाराज की याद आती है, मन्दिर में बैठे परमात्मा की याद आ जाती है। लेकिन यदि अनुकूलताएँ मिलने लगें तो फिर तो यहीं स्वर्ग मिल जायेगा।

विपत्तियाँ जीवन की अमूल्य निधियाँ हैं। वह व्यक्ति के जीवन में बड़ा मोड़ लाती है। सीताजी की अग्नि परीक्षा हुई, तभी उनका मोह भंग हुआ और दीक्षा की सोच पैदा हुई। अंजना सती यदि इतना कष्ट सहन न करती तो कोई उनका नाम नहीं लेता। उनको इतना यश एवं गौरव प्राप्त नहीं होता।

अहंकारी पुरुष और महिला अपने जीवन और परिवार को नरक बना देती हैं। जबकि नम्र पुरुष और महिला उसी परिवार को स्वर्ग बनाती हैं। आत्महत्या की भावना भी कृष्ण लेश्या का परिणाम है। आत्महत्या के परिणाम यदि मन में आते हैं, तो खोटी आयु का बन्ध होता है।

नागदत्त नाम के एक सेठ थे। उन्होंने एक बहुत सुन्दर महल बनवाया। फिनिशिंग का कार्य चल रहा था। सेठ जी कारीगरों को आदेश दे रहे थे कैसा रंग रोगन हो। पुराने समय में कला की बहुत कीमत थी। समस्त कार्यों में ठोसता स्पष्ट झलकती थी। इतने में ही एक संत जी वहाँ से निकले। उनको हंसी आ गई। सेठ जी की नजर उन पर पड़ी। सेठ जी ने कहा क्या बात है? मुझे देखकर क्यों मुस्कुराये? संत जी ने कोई उत्तर नही दिया।

वह महल बनाने वाला सेठ एक दिन अपने बच्चे को खाना खिला रहा था, तो उसने उसी थाली में पेशाब कर दी। एक बार वह दुकान पर बैठे थे। एक कसाई बकरे को लेकर जा रहा था। वह बकरा सेठ जी की ओर देखकर बार-बार चिल्लाता था। सेठ जी को दया आई उन्होंने एक मुहर में बकरे को छोड़ने के लिए कहा, लेकिन कसाई ने 5 मुहरें माँगी तो वह चुप रहे। वह बकरा कसाई के हाथों से हलाल हो गया।

संत जी वहाँ फिर आये और पुनः मुस्कुराये। सेठ जी ने कहा, महाराज आप तीन बार मुझको देखकर मुस्कराये हैं क्या बात है? संत जी ने कहा– तुम जिस महल की फिनिशिंग करा रहे थे, उस महल में तुम कितने दिन रहोगे? तुम्हारी आयु तो कुल 7 दिन की है। सिर में शूल लगेगा और आपकी मृत्यु हो जायेगी। यह जो तुम्हारा पुत्र है, इसने पिछले जन्म में तुम्हारी पत्नी के साथ गलत कार्य किया था। इसलिए तुमने इसको मार दिया था। आज यह पुत्र बनकर तुम्हारे साथ बैर निभाने आया है। यह तुमको बिल्कुल साफ कर देगा। और यह जो बकरा है, यह पूर्व जन्म में तुम्हारे पिताजी का जीव था। कुछ ऐसा संयोग बना कि तुम्हारे पास बार-बार आ रहा था। अतः यह पूर्व जन्म के बैर भाव भी कृष्ण लेश्या के माध्यम से अनेक जन्मों तक चलते रहते हैं।

नील लेश्या वाला व्यक्ति आलसी होता है। आलस्य इसका प्रधान गुण धर्म है। किसी भी काम के लिए मन में उत्साह नहीं होता। नील लेश्या वाला व्यक्ति मंदबुद्धि वाला होता है। इस लेश्या वाला जीव स्त्रियों का अत्यन्त लोभी होता है। विषय कषायों का पोषण करने वाला होता है। जहाँ स्त्रियों की अधिकता होगी, वहीं अपनी धूनी रमा लेता है। इस लेश्या वाला व्यक्ति ठगी होता है, मायाचारी से भरा होता है, मान बहुत चाहता है, अपनी पूजा-सम्मान का भूखा बना रहता है।

कापोत लेश्या कबूतर के समान होती है। ऐसा व्यक्ति शोकमग्न रहता है। उसके चेहरे पर तनिक भी मुस्कराहट नहीं होती। वह किसी से भी प्रेम से हाथ नहीं मिलाता। सदा कष्ट में बना रहता है। दूसरे के बुरे में आनन्द मनाने वाला होता है। परनिन्दा एवं आत्म-प्रशंसा में इसका मन ज्यादा लगता है।

पीत लेश्या वाला व्यक्ति प्रबुद्ध होता है, प्रज्ञ हो जाता है। उसके मन में समझदारी का जन्म हो जाता है। विवेक का जन्म हो जाता है। वह जो भी कार्य करेगा, सोच-समझकर करेगा। एक-एक कदम सम्हालकर रखेगा। करूणा व दया से भरा होता है। दूसरे के दुःख को अपना दुःख समझता है। दूसरे का दुःख बाँटने में तत्पर रहता है। कार्य और अकार्य का विचार करने वाला होता है। लाभ-अलाभ में समता भाव रखता है। दूसरों में प्रीतिभाव रखता है।

पद्म लेश्या वाला दया के भावों से भरा होता है। त्याग करने में अग्रणी होता है। परमात्मा की पूजा करने में सदैव तत्पर रहता है। परमात्मा के प्रति हृदय में गहरी आस्था होती है। आनन्द में रहता है।

शुक्ल लेश्या वाला रागद्वेष से मुक्त, शोक और निन्दा से रहित होता है। परमात्मभाव से सम्पन्न होता है। वह अन्तरंग में पवित्रता का अनुभव करता है।

कृष्ण लेश्या का वर्ण काला होता है। अकेले वर्ण ही काला नहीं होता, उसमें दुर्गन्ध भी होती है। कृष्ण लेश्या के परमाणुओं में दुर्गन्ध होती है। हम बाहर की दुर्गन्ध मिटाने को तो कभी-कभी इत्र या सुगन्ध का प्रयोग करते हैं। परन्तु हम अनुभव करें तो भीतर के परमाणुओं में कितनी दुर्गन्ध है? कृष्ण लेश्या का रस कडुए तुंबे से भी अनन्त गुना कड़वा होता है। उसका करवत से भी अनन्तगुना ज्यादा कर्कश होता है। ऐसी कृष्ण लेश्या के परमाणुओं को हम भीतर आभामण्डल के साथ जोड़े हुए बैठे हैं।

नील लेश्या के आभामण्डल में नील लेश्या के परमाणुओं का रस त्रिकुट और गजपीपल के रस से भी अनन्तगुना तीखा होता है।

कापोत लेश्या के आभामण्डल में कापोत लेश्या के परमाणुओं का रस कच्चे आम और कच्चे कपित्थ के रस से भी अनन्तगुना कषैला होता है। हम अपने भीतर ऐसे-ऐसे रसायनों को संजोए बैठे हैं, फिर भी बाहर से साफ रहने का प्रयत्न कर रहे हैं। भीतर की निर्मलता अधिक मूल्यवान होती है।

पीत लेश्या, पद्म लेश्या और शुक्ल लेश्या के वर्ण, रस, गंध और स्पर्श प्रशस्त होते हैं। पीत लेश्या का वर्ण नवोदित सूर्य जैसा लाल होता है। पद्म लेश्या का वर्ण असन के पुष्प जैसा पीला होतो है। शुक्ल लेश्या का वर्ण शंख जैसा श्वेत होता है। इन तीन लेश्याओं की गंध सुगन्धित पुष्पों की गंध से अनन्तगुनी गंध, खजूर दाख से अनन्तगुना मीठा रस और नवनीत तथा शिरीष पुष्पों से अनन्तगुना मृदु स्पर्श होता है।

अमरीकन वैज्ञानिक महिला डॉ० जे०सी० ट्रस्ट ने सूक्ष्म संवेदनशील कैमरों से आभामण्डल के फोटो लिए। उन्होंने बताया- ''मैंने देखा कि जो लोग बाहर से साफ सुथरे रहते हैं, किन्तु भीतर में मलिनता को संजोए रहते

हैं, उनके आभामण्डल अत्यन्त विकृत और गंदे होते हैं। जो लोग शरीर से साफ सुथरे नहीं हैं, किन्तु भीतर पवित्र हैं, उनके आभामण्डल बहुत स्वच्छ और निर्मल होते हैं।''

जैन परम्परा में यह मान्यता है कि तीर्थंकर के शरीर से कमल के फूल जैसी गंध आती है। यह गंध शुभ भावों की प्रतीक है। जिस व्यक्ति के भाव निश्छल, पवित्र और सरल होते हैं, उस व्यक्ति के शरीर से भी निर्मलता टपकेगी, सुगंध आयेगी।

भगवान महावीर ने लेश्या शुद्धि के तीन बाहरी सूत्र बतलाए हैं– उपवास, कायोत्सर्ग और प्रतिसंलीनता, जो हमारी कषाय को मंद करते हैं। जब हमारी कषाय मंद होती चली जाएगी, तब चैतन्य की रश्मियाँ अपने आप बाहर फूटेंगी। भगवान महावीर की वाणी में बार-बार यह उद्घोषणा मिलती है कि– लेश्या की शुद्धि हुए बिना जाति-स्मृति-ज्ञान नहीं हो सकता, अवधिज्ञान नहीं हो सकता, मनः पर्ययज्ञान नहीं हो सकता और लेश्या की शुद्धि के बिना केवलज्ञान नहीं हो सकता है। जो भी अन्तर्ज्ञान होता है वह लेश्या की विशुद्धि में ही होता है।

हम मंगल भावना करें, ध्यान का ऐसा उपक्रम करें, जिससे जीवन में सरलता जागे और शांति जागे। रासायनिक परिवर्तनों के द्वारा बाहर के जीवन में ये सब जागें, भीतर के भी सब बन्द दरवाजे खुलें, सारे आवरण हटें और अन्तर का ज्ञान बाहर आये। अन्तर में जो आनन्द का सरोवर हिलोरें ले रहा है, हम उसका अनुभव करें और उस आनन्द को समस्त संसार में बिखेर दें।

''अहिंसा विश्वधर्म की जय''

卐 ———— 卐 ———— 卐

आवेशी नहीं, सहिष्णु बनिये

सिद्धं सम्पूर्ण भव्यार्थसिद्धेः कारणमुत्तमम्,
प्रशस्त-दर्शन-ज्ञान-चारित्र-प्रतिपादनम्।
सुरेन्द्र-मुकुटाश्लिष्ट-पादपद्मांशुकेशरम्,
प्रणमामि महावीरं लोकत्रितय-मंगलम्।।

बन्धुओं! आधुनिक युग में भौतिकता की चकाचौंध से जिनकी दृष्टि और मति विपरीत हो गई है, ऐसे अभागे प्राणी पंचेन्द्रियों के विषयों में आकण्ठ डूबे हुए, आत्मोत्थान के मार्ग से बहुत दूर हो चुके हैं। विषय- भोगों में ही सुख-शांति की प्राप्ति मान बैठे हैं। दिन-रात कषायों के चक्र में घूमते रहते हैं। पल-पल में आवेश उनकी मुख मुद्रा पर छाया रहता है जो कि उसका स्वभावगत गुण नहीं है।

एक ब्राह्मण परिवार था, जिसका जीवन सांसारिक कार्यों के साथ-साथ धार्मिक क्रियाओं एवं प्रभु-भक्ति के साथ गुजरता था। गृहस्थ जीवन में उतार-चढ़ाव आते रहते हैं। इन परिस्थितियों को आप बदल नहीं सकते हैं। लेकिन परिस्थितियों में सामंजस्य बिठा सकते हैं। यह सामंजस्य की कला धर्म के माध्यम से, देव, शास्त्र, गुरू के माध्यम से आपको प्राप्त हो सकती है। इस सांसारिक दुनिया में जब व्यक्ति अपनी जीवन डायरी को खोलता है तो मिथ्यादृष्टि व्यक्ति को बड़ी विषम परिस्थितियाँ नजर आती हैं। लेकिन जो विवेकी हैं, अनन्त चतुष्टयों की महत्ता को जिन्होंने समझा है, जाना है, भोगों की असारता को पहचाना है, वह अपने जीवन में विषमताओं के बीच में भी समता को खोज लेता है और जीवन में समता धारण कर सुख पूर्वक जीवन जीता है।

आवेश खतरनाक है। आवेश अशान्ति को निमन्त्रण देता है। आवेश जीवन को अवनति की ओर ले जाता है। आवेश पर जिसने नियन्त्रण किया, आवेश को जिसने समझा, वह परमात्मा बन जाता है। सम्यग्दृष्टि के सम्बन्ध

में समयसार में एक चर्चा आती है कि सम्यग्दृष्टि के भोग निर्जरा के कारण हैं। निर्जरा सात तत्त्वों में एक है। हमारा जीवन निरन्तर आस्रव एवं बंध प्रणाली से व्यतीत हो रहा है।

श्री उमास्वामी महाराज ने उसके शुभ आस्रव और अशुभ आस्रव ये दो भेद किए हैं। अकलंक स्वामी ने उसकी बहुत व्याख्या की है और आस्रवों को रोकने के लिए उन्होंने अनेकों उपाय बताए हैं। आस्रव के निरोध को संवर कहा जाता है–

आस्रवनिरोधः संवरः।

और उस आस्रव निरोध के जो प्रत्यक्ष कारण बताए हैं, उनसे हम आवेश पर नियन्त्रण कर सकते हैं।

कुछ लोग व्यवहार धर्म को धर्म स्वीकार नहीं करते हैं। केवल आत्मा में ही रमण करना धर्म मानते हैं। पूजन, पाठ, व्रत, उपवास और जितनी व्यावहारिक क्रियायें हैं, यह सब धर्म नहीं है, यह सब पुण्य के कारण हैं, ऐसा कहते हैं, जबकि व्यवहार धर्म को भी आचार्यों ने स्वीकार किया है। आत्मा में रमण करना निश्चय धर्म है तो निश्चय धर्म में पहुँचाने के लिए व्यवहार एक सेतु का कार्य करता है। हमारे आचार्यों ने परम उपासना को मोक्ष का कारण स्वीकार किया है। सम्यग्दर्शन की जितनी भी क्रियाएँ हैं, विवेकी जीवन की जितनी भी क्रियाएँ हैं, उन्हें परम्परा से मोक्ष का कारण स्वीकार किया गया है।

मात्र संसार बन्ध का कारण ही हो, आस्रव बन्ध का कारण ही हो ऐसा एकान्त नहीं है। मैं आपसे स्याद्वाद की बात कर रहा हूँ, सहिष्णुता की बात कर रहा हूँ। भगवान की पूजन एवं उपवास आप करते हैं। यह सब जड़ की क्रियाएँ है। आत्मा से इनका कोई सम्बन्ध नहीं है। यह भी एकान्त कथन है। जबकि प्रारम्भिक स्थिति में यही क्रियायें सम्यग्दर्शन में माध्यम बनती हैं। गृहस्थ की भूमिका में ६ आवश्यक कर्तव्य बताए हैं–

देव पूजागुरूपास्तिः स्वाध्यायः संयमस्तपः।
दानंचेति गृहस्थानां षट्कर्माणि दिने दिने॥

गृहस्थ अवस्था में रहते हुए भी जीवन को किसी तरह सुख शान्तिमय

बना सकते हैं। पारिवारिक जीवन को व्यतीत करते हुए, सांसारिक सब प्रकार की उलझनों में रहते हुए भी गृहस्थोपयोगी कार्यों को अपनाएँ तो जीवन में आपको शान्ति मिल सकती है। परमात्मा के दर्शन एवं देवपूजा आपकी शांति के लिए आवेश/कषायों एवं पापों को रोकने में माध्यम बन सकते हैं। दर्शनपाठ में पढ़ते हैं–

दर्शनं देव देवस्य, दर्शनं पापनाशनम्।
दर्शनं स्वर्ग सोपानं, दर्शनं मोक्ष साधनम्।।

यह जितने भी व्यावहारिक कारण हैं, आचार्यों ने इनको भी संवर एवं निर्जरा में कारण स्वीकार किया है। भगवान का पूजन, व्रत, गुप्ति, समिति, धर्मानुप्रेक्षा, परीषहजय और चारित्र भी संवर एवं निर्जरा में कारण हैं।

समयसार में जो यह कहा गया है कि सम्यग्दृष्टि के भोग तो निर्जरा के कारण हैं, तो जो व्यक्ति जितने अधिक भोगों को भोगता है, वह जल्दी मोक्ष जायेगा और जो कम भोगों को भोगता है वह देर से मोक्ष जाएगा। मुनि महाराज तो एक बार आहार लेते हैं, गृहस्थ तो दिन भर खाता-पीता है। भोग में गृहस्थ का जीवन ज्यादा बीतता है तो गृहस्थ को पहले मोक्ष होगा। साधु-संतों-मुनिराजों को बाद में मोक्ष होना चाहिए। किन्तु ऐसा नहीं है। थोड़ा समझने का प्रयास करें। वहाँ वीतराग सम्यग्दृष्टि की बात कर रहे हैं न कि सराग सम्यग्दृष्टि की। अभिप्राय/प्रसंग को न समझने से जीवन में अनेक प्रकार की विकृतियाँ जन्म लेती हैं।

एक और चर्चा चलती है–

कोटि जनम तप तपैं, ज्ञान बिन कर्म झरैं जे।
ज्ञानी के छिनमाहिं, त्रिगुप्ति तैं सहज टरैं ते।।
मुनिव्रत धार अनंत बार, ग्रीवक उपजायौ।
पै निज-आतमज्ञान बिना, सुख लेश न पायौ।।

कहते हैं कि मुनिराज बनने से, त्यागी-व्रती बनने से कुछ नहीं होता है। कई बार मुनि बने किन्तु कुछ नहीं हुआ। वहाँ जो चर्चा चल रही है, वहाँ पर यह चर्चा नहीं है कि त्याग-व्रत संयमव्रत, मुनिव्रत से कुछ नहीं होता है। सम्यग्ज्ञान का प्रसंग वहाँ चल रहा है। बन्ना के घर में तो बन्ना के ही गीत

गाए जाते हैं और बन्नी के घर में बन्नी के ही गीत गाए जाते हैं। उसी तरह से जहाँ सम्यग्दर्शन की विवक्षा को लेकर व्यक्ति मुख्यता से बात करता है तो वह कहता है कि सब धर्मों का मूल तो सम्यग्दर्शन है और जब सम्यग्ज्ञान की बात आती है तो सब कुछ सम्यग्ज्ञान को कहा जाता है। जब चारित्र की बात आती है तो सब कुछ सम्यक् चारित्र को कहा जाता हैं। किन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि जब चारित्र की बात आ रही हो तो ज्ञान और दर्शन का कोई महत्व नहीं है। सबका अपना-अपना महत्व है, अपना-अपना स्थान है। लोग ज्ञान की बात तो करते हैं। तीन गुप्ति किसके लिए होती हैं? गृहस्थों के धोती और पेंट-शर्ट पहने ही तीन गुप्ति बन जायें तो फिर शास्त्र का क्या होगा? यह शास्त्र की भाषा, आगम की भाषा को हमें उसी रूप में समझने का प्रयास करना चाहिए।

एक माता जी का कथन है कि महाराज जी! द्रव्य का परिणमन तो स्वतन्त्र है। मैं पूछता हूँ कि जब द्रव्य का परिणमन स्वतन्त्र है, तो बाल जब सफेद हो जाते हैं तो उन्हें फिर काला क्यों करते हो? चेहरे का परिणमन चेहरे के आधीन है तो चेहरे पर क्रीम, पाउडर का लेप क्यों करते हो? क्रीम, पाउडर का परिणमन उसके अधीन है। खाने की आवश्यकता नहीं है। इस माइक की भी आवश्यकता नहीं है, क्योंकि माइक का परिणमन माइक के अधीन है। बच्चे का परिणमन बच्चे के अधीन है।

आप सुबह उठकर अपने बच्चे को जल्दी से तैयार कर स्कूल भेजकर यहाँ जल्दी आती हो कि प्रवचन न निकल जाए। जिनवाणी के दो शब्द सुन लेंगे। पता नहीं कौन सा शब्द लग जाय और जीवन का उत्थान हो जाए, हृदय में परिवर्तन हो जाय, जीवन में परिवर्तन हो जाय।

आगम में निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध स्वीकार किया गया है। उनका अपना प्रभाव हुआ करता है। द्रव्य का परिणमन सर्वथा स्वतन्त्र नहीं है। स्वभाव में जब आ जाता है तो आपका परिणमन स्वतन्त्र होता है किन्तु अभी आपकी मिली जुली सरकार चल रही है, शुद्धाशुद्ध गुणों का द्रव्य पिण्ड जो है। ऐसी दशा में द्रव्यों का परिणमन कथंचित् परतन्त्र जिनागम में स्वीकार किया गया है। सर्वथा परतन्त्र मान लेंगे तो कभी मुक्ति नहीं हो सकती है। सर्वथा स्वतन्त्र मान लेंगे तो भी आपकी मुक्ति संभव नहीं। इसीलिए अपेक्षाओं को समझने और मानने का प्रयास करना चाहिये।

सम्यग्ज्ञान की बात चल रही थी। उपवास, त्याग करना, व्रती बनना सरल काम नहीं है। घर का मोह छोड़ना, परीषह सहन करना आसान नहीं है। यदि आपको बैड टी न मिल पाए तो आवेश आ जाता है। सुबह नाश्ते में अनुकूल वस्तु न मिले, समय पर भोजन न मिले तो बस मूड बिगड़ जाता है। बच्चों को स्कूल समय से न भेज सके तो मम्मी की आफत आ जाती है।

साधु संत बनने के लिए साधना की आवश्यकता पड़ती है। और इसके लिए बहुत कुछ अपेक्षित है। परिवार का व्यामोह छोड़ना, चौबीस घंटे में एक बार आहार लेना, सर्दी सहन करना यह कोई आसान काम नहीं है। इन सबमें साधना की आवश्यकता है। संतों की इसी साधना के समक्ष मानव नत मस्तक होता है, क्योंकि–

आग लगी संसार में, झर-झर गिरत अंगार।
जो न होते संत जन, तो जल जाता संसार॥

आप लोग दो दिन के लिए शहर से बाहर जाते हैं, पानी बदलता है, तो नजला, सर्दी, जुकाम के शिकार हो जाते हैं। जिनको रोज ही बाहर घूमना हो, और घर-घर का भोजन करना पड़े, उसको पचाना हँसी खेल नहीं है। लेकिन जब दृष्टि बदल जाती है, आत्मज्ञान होता है, पूर्ण ज्योति के प्रकाश में जीना सीख लेता है, उसे कोई कार्य कठिन नहीं है। आपके जीवन में वैराग्य की समीचीनता होनी चाहिए।

वह जो ज्ञानी के साथ त्रिगुप्ति की बात कही गई है, उसके लिए मुनिराज ही साधना कर सकते हैं। सराग सम्यग्दर्शन एवं वीतराग सम्यग्दर्शन की व्यवस्था की है। पूज्यपाद स्वामी ने सर्वार्थसिद्धि में आस्तिक्य, प्रशम, संवेगादि को कहा है। सप्तम गुणस्थान तक सराग सम्यग्दर्शन चलता है। उसके उपरान्त वीतराग सम्यग्दर्शन है। जो मुनिराज श्रेणी में आते हैं, उनकी जो भी क्रियायें होती हैं, वे निर्जरा का कारण हैं। उस समय परिणामों की जो विशुद्धता है, क्षायिक क्षायोपशमिक काल में जो विशुद्धि आपकी बन रही है, वह संवर निर्जरा का कारण हो सकती है। भोग कभी संवर, निर्जरा के कारण नहीं हो सकते हैं। मुनिराज श्रेणी में जो लीन हैं, उनकी जो क्रियायें है, वह संवर निर्जरा के कारण हैं। यह आगम की व्यवस्था है।

उस ब्राह्मण परिवार में दम्पत्ति बहुत गरीब थे। किसी तरह विपन्नावस्था में जीवन निर्वाह हो रहा था। एक बार सारा दिन परिश्रम करने के बाद भी कुछ भी हाथ नहीं आया। सोचते-सोचते परेशान हो गया, घर आ गया। आपको आवेश का कारण मालूम है– सहिष्णुता का अभाव, और इसके लिए धर्मग्रन्थों की बड़ी आवश्यकता है। सहिष्णुता के लिए मंदिर एक माध्यम है। मैत्री का विकास अत्यन्त आवश्यक है। साथ ही दक्षता भी अपेक्षित है। चार प्रकार की कषायें हैं– क्रोध, मान, माया, लोभ। उनकी भी कम्पनियाँ है, क्वालिटी हैं। आगे इनके भेदाभेद हो जाते हैं–

अनन्तानुजुबन्धी जानो, प्रत्याख्यानअप्रत्याख्यानो।
संज्वलन चौकड़ी गुनिए, सब भेद जु षोड़श गुनिए।।
परिहास अरति रति शोक, भय ग्लानि त्रिवेद संयोग।
पनबीस जु भेद भये इम, इनके वश पाप किये हम।।

यह पच्चीस कषायें हैं, अनन्तानुबन्धी एक कम्पनी है। इनके चार-चार भेद हैं। सम्यग्दृष्टि जो होता है, धर्मात्मा जो होता है, वह इन कषायों पर पूर्ण अनुशासन कर लेता है। गृहस्थों की भी क्वालिटी है। जो श्रेष्ठ व्यक्ति होते हैं, उनको क्रोध कम आता है। अन्तर्महूर्त में वह उसको क्षमा प्रदान कर देते हैं, जिसे आप संज्वलन कषाय कहते हैं। पानी की रेखा के सदृश उत्कृष्ट सज्जन पुरुषों का आवेश हुआ करता है। क्योंकि जिनको आत्मज्ञान हुआ है, जिन्होंने परमात्मा से परिचय प्राप्त किया है, जीवन की वास्तविकता को समझा है, वह भली-भाँति जानते हैं कि इस संसार में शांति नहीं है, शांति आपके अपने पास है। इसलिए हम पूजन में पढ़ते हैं–

संसार महादुःख सागर के, प्रभु दुःखमय सुख आभासों में।
मुझको न मिला सुख क्षण भर भी, कंचन कामिनि-प्रासादों में।।

यदि जीवन में आपके सात्विकता है, सहिष्णुता है तो आपको शांति मिल सकती है। शांति आपके ऊपर निर्भर है, बाहर के वातावरण पर निर्भर नहीं है। कहा जाता है–

चंदन विष व्यापत नहीं, लिपटे रहत भुजंग।

उस चंदन पर रात-दिन सर्प लिपटे रहते हैं, फिर भी चंदन का कुछ बिगड़ता नहीं है। जिसने चैतन्य ज्योति के प्रकाश में, भेद विज्ञान में जीना

सीखा है, उसे चंदन की ही तरह संसार के विषय प्रभावित नहीं करते हैं। उसे कभी आवेश नहीं आता है। वह जानता है कि कितना किसके साथ संयोग है? आवेश काम कर रहा है तो वह अशांत और बैचेन रहेगा। जड़ पदार्थों पर कभी क्रोध नहीं आता है।

लाओत्से का नाम आपने सुना होगा। वह एक बार नौका में जा रहे थे। लाओत्से की नौका से एक नौका की टक्कर हो गई। जिंदगी का आखिरी वक्त नजर आने लगा। लेकिन किसी को आवेश नहीं आया। सभी लोग डूबने को तैयार हैं। लाओत्से ने व्याख्या की, अगर कोई नौका में बैठा होता तो मल्लाह को, नाविकों को क्रोध आता। नौका खाली थी। किस पर क्रोध किया जाय? इस तरह के प्रसंगों से हमें यह शिक्षा मिलती है कि महापुरूषों का जीवन कैसे गुजरता है। जिनके जीवन में धर्म को स्थान मिला, शांति जिनको इष्ट थी, वह गलत प्रसंग मिलने पर, प्रतिकूलताऐं मिलने पर भी विनोद से उनको टाल सकता है। जबकि अज्ञानी जीव जरा सी प्रतिकूलता मिलने पर बार-बार तनाव पैदा करता है और रोगों को निमन्त्रण देता है।

एक बात और देखने में आती है कि आप अपने व्यक्तियों पर अधिक क्रोध करते हैं। दूसरों पर क्रोध करने से, झगड़े से हाथ पैरों के टूटने का डर रहता है। जो व्यक्ति जितना कमजोर होगा वह उतना अधिक क्रोध करता है। सहिष्णुता आपका स्वभाव है। क्रोध आवेश तो बाहर से आई चीजें हैं। श्रीराम या भगवान महावीर के जीवन को हम देखते हैं, सती सीता, सती मैना के जीवन को जब हम देखते हैं तो उनके जीवन में सहिष्णुता थी। उसी के सहारे प्रत्येक प्रतिकूलताओं से उन्होंने मुक्ति प्राप्त की। सहिष्णु स्वभाव के लिए खान-पान की शुद्धता भी अत्यन्त आवश्यक है।

आजकल वैसे तो व्यक्ति को दूध, घी का शुद्ध रूप उपलब्ध हो पाना संभव नहीं है। और फिर उसको पचाने के लिए मेहनत अत्यन्त आवश्यक है। शरीर रूपी मशीन को चलाइये, लगातार चलाइए। यदि इससे काम नहीं लेंगे तो इसमें जंग लग जाएगी। हमारे रोगों का एक कारण कामचोरी भी है। आज एक बाल्टी पानी का भार उठाने में पसीना आता है। आजकल जीवन में श्रम का अभाव होता जा रहा है। मजदूर स्त्रियों को कभी प्रसव में

असुविधा नहीं होती। बड़े घरों की महिलाएँ हमेशा ऑपरेशन की शिकार होती हैं, जिसमें कि स्वयं के साथ घर वालों की भी परेशानी बढ़ जाती है।

सहिष्णुता आपके जीवन में आयेगी तो आप स्वस्थ रह पायेंगे। स्वस्थ मन और मस्तिष्क वाला व्यक्ति धैर्यपूर्वक किसी की बात को सुनता है, लेकिन कमजोर व्यक्ति पर आवेश जल्दी असर करता है। इस क्रोधावेश पर कन्ट्रोल/नियन्त्रण करने के लिए मौन आवश्यक है। अपनी जिह्वा का स्वाद बदल लीजिए, कुछ मीठा-मीठा खा लीजिए। स्वाद बदलेगा तो मन की प्रवृत्ति भी बदल जाएगी। धर्म क्या है? जो जीवन में अपने कुविचारों को नहीं बदल पाता, वह धर्म नहीं कर सकता है।

एक युवक आया, बोला-महाराज जी! आपके प्रवचन का बड़ा असर हुआ है। हमारे एक मित्र ने आपके प्रवचन सुनकर शराब पीना छोड़ दिया है। कई साथियों ने पान गुटकादि का त्याग कर दिया है। बंधुओं! यदि आपके जीवन में संत सान्निध्य ने आपके हृदय को नहीं झकझोरा तो उस सन्त की सान्निध्यता सार्थक नहीं है, क्योंकि संत तो परमात्मा की जीवन्त कृति है। यह प्रकृति के प्राण और सभ्यता के चरमोत्कर्ष हैं। जिस दिन इस वसुन्धरा से सत्य का आचरण उठ जाएगा, उस दिन ही हमारी नैतिक, चारित्रिक एवं धार्मिक सभ्यता को अनुप्राणित करने वाले आध्यात्मिक संस्कृति के संवाहक संतों का अभाव हो जाएगा।

संत जलते हुए चिराग होते हैं, जिसके माध्यम से अनेक बुझे दीप प्रज्वलित हो जाते हैं। संत निष्कंप दीप होते हैं जिन्हें प्रलयकाल का तूफान भी नहीं बुझा सकता है। इसीलिए कहा जाता है-

सूरज के बिना सुमन खिल नहीं सकता।
नीरज के बिना मकरंद मिल नहीं सकता।।
पर बन्धुओं भव-भव में भटकने वालों को।
संत के बिना रास्ता मिल नहीं सकता।।

संत सान्निध्य में आप भी अपने को बदलने का प्रयास करिये, क्योंकि परिस्थितयाँ कभी नहीं बदलेंगी, आपको ही बदलना पड़ेगा। परिवार का वातावरण भले ही बदल जाए लेकिन समाज एवं राष्ट्र का वातावरण नहीं

बदल सकता। परन्तु आप तो बदल सकते हैं। जैसे ही आप अपने-अपको बदलना आरम्भ करेंगे, शांति और सत्य की खोज की तरफ आपके कदम मुड़ जायेंगे।

यदि क्रोध आपको आता ही है, किसी पर क्रोध करना ही है तो जरा विवेकपूर्वक करें। अपने आपको होश में रखकर क्रोध करें, क्योंकि अविवेकपूर्ण क्रोध घातक होता है। आपको यह बात अटपटी लग सकती है। आप सोचते हैं कि गुस्सा नहीं आये तो तभी गुस्सा आता है। इसका अर्थ है कि आपकी इच्छा शक्ति, संकल्पशक्ति कमजोर है। जिनकी संकल्पशक्ति मजबूत है वह अपने पर नियंत्रण कर लेते हैं। आप अपनी इच्छाशक्ति को कोशिकाओं तक नहीं पहुँचा पाते हैं। नहीं तो निश्चित रूप से आपकी भावनाओं में परिवर्तन हो सकता है।

वह ब्राह्मण जब खाली हाथ लौटकर घर आया तो पत्नी ने पूछा, खाली हाथ आये हो? उसने कहा, क्या करें? कोई दातार ही नहीं मिला। जब पत्नी को क्रोध आया तो ब्राह्मण ने कहा, मैं रोज लाकर तुम्हें खिलाता हूँ, क्या तुम मुझे एक दिन भी नहीं खिला सकती। वह महिला शीलव्रत/पतिव्रता नारी थी। भूखे व्यक्ति को शेर, भेड़िया आदि नामों से पुकारा जाता है। ब्राह्मण ने भी आवेश में आकर पत्नी को पीटना आरम्भ कर दिया। लेकिन पत्नी अपनी मर्यादा को समझती थी। पत्नी भी बराबर से हाथ उठाए, यह ठीक नहीं है। सहिष्णुता के परिचय से ही परिवार की मर्यादाएँ जीवित रहती हैं।

ब्राह्मण पत्नी के जीवन में शास्त्र स्वाध्याय से विवेक ने स्थान पाया था। श्रीराम ने भी सती सीता को जब जंगल में भिजवाया था तो लौटते समय कृतान्तवक्र ने पूछा कि माँ श्रीराम से कुछ कहना है? माँ सीता ने इतना ही कहा कि कह देना आपने एक अफवाह के कारण जिस प्रकार मुझ निर्दोष को त्यागा है, वैसे कभी अपने धर्म को नहीं छोड़ना। यह था उस सती के जीवन का आदर्श। पृथ्वी जैसी सहन-शीलता व्यक्ति में होना चाहिए। पृथ्वी पर आप गन्दा फेंके या अच्छा, वह सबको सहन करती है। इसी तरह जिसके जीवन में सहिष्णुता आती है, वह महान बनता है, जीवन उन्नति को प्राप्त करता है।

प्रत्येक महात्मा, महापुरुष के जीवन की कोई न कोई घटना हमें इस बात का आदर्श प्रस्तुत करती है कि किस प्रकार अपने सहिष्णु स्वभाव के कारण वह जीवन में ऊँचे उठे। हम दशलक्षण पूजन में पढ़ते हैं–

पीडैं दुष्ट अनेक, बाँध मार बहुविधि करैं।
धरिये छिमा विवेक, कोप न कीजै पीतमा।।

दुष्ट लोगों के द्वारा कितनी प्रतिकूलता पैदा की जाए, हमें क्षमा के द्वारा उसको समाप्त करना है। द्वीपायन मुनि के क्रोध का परिणाम था कि सारी द्वारिका नगरी जल गई। कमठ के जीव ने आवेश किया। वह संसार में भ्रमण कर निगोद में पड़ा है। भगवान पार्श्वनाथ ने क्षमा का परिचय दिया। वह मोक्षमहल में विराजमान हैं। धर्मात्मा अपना दोष देखता है। अज्ञानी समस्त संसार के दोष देखता फिरता है।

जब पति ने ब्राह्मणी को पीटा तो वह चिल्लाई। पुलिस ने आकर उस ब्राह्मण को थाने पहुँचा दिया। राज दरबार में उसकी पेशी हुई। कर्मचारियों ने कहा कि इसने अपनी पत्नी को पीटा है। राजा ने पूँछा क्यों भाई तुमने ऐसा क्यों किया? ब्राह्मण ने कहा– मैं ब्राह्मण नहीं चाण्डाल हूँ। ब्राह्मण वह होता है जो ईश्वर की भक्ति करता है, वात्सल्य, करूणा की धारा जिसके जीवन में बहती है। क्रोध करने वाला तो चाण्डाल होता है। मैंने भी क्रोध किया, इसलिए मैं भी चाण्डाल हूँ। मैंने ब्राह्मण का नहीं चाण्डाल का कार्य किया है।

जब राजा ने सुना कि ऐसा व्यक्ति भी मेरे राज्य में हैं जिसको कि पेट भर भोजन भी नहीं मिलता है। फिर भी वह अपनी गलती को स्वीकार कर रहा है। जो अपनी गलती की निंदा, आलोचना करता है, यही उसका बड़प्पन है। राजा को उसकी सत्यप्रियता से अत्यन्त प्रसन्नता हुई। उसने हजारों दीनारों, स्वर्ण मुद्राओं के साथ उसको विदा किया।

घर में सास-बहू के बीच द्वन्द चल रहा था कि तुमने मेरे बेटे को जेल भिजवा दिया। जब पतिदेव धन वैभव के साथ पहुँचते हैं तो सबको बड़ा आश्चर्य हुआ। अपनी गलती को स्वीकार करने का प्रतिफल है यह। यदि अनुकूल कार्य करने पर भी प्रतिकूलता प्राप्त हो तो सोचें कि–

ते करम पूरब किये खोटे, सहै क्यों नहिं जीयरा।
अति क्रोध अगनि बुझाय प्राणी, साम्य जल ले सीयरा।।

अपनी गलती को स्वयं स्वीकारें। अपने अशुभ कर्म का उदय है तो प्रतिकूलतायें आ सकती हैं। जब पुण्य कर्म का उदय आता है तो पराये व्यक्ति भी अपने हो जाते हैं। जितनी भी यह फौज है नाते रिश्तों की, सांस निकलने पर कोई आपका नहीं है। जीवन में क्षमा मैत्री के द्वारा शांति का अनुभव करते जाइये, जिससे कि बैर तनाव में शोधन होगा। हम धार्मिक क्रियाओं के द्वारा शांति प्राप्त कर महान् बन सकते हैं। थोड़ी सी जिन्दगी मिली है। उसे दूसरों के कल्याण में लगा दें और प्रार्थना करें परमपिता से कि हे परमात्मा! मुझे इतनी शांति दे कि गृहस्थ जीवन में रहते हुए भी अपने जीवन को सार्थक बना सकूँ। हम सभी को परमात्मा तक पहुँचने का मार्ग खोजकर अपने जीवन को सार्थक बनाना चाहिए। हम गुस्सा क्यों करें? आवेश करने से क्या होगा?

आजकल क्रोध के बिना तो जिन्दगी चलती नहीं है। भोजन नहीं करेंगे, चाय-पानी नहीं पियेंगे तो कोई बात नहीं, लेकिन क्रोध के बिना तो भोजन नहीं पचता है। कषाय करना, आवेश करना जरूरी है। परन्तु बन्धुओं! आपको यह ज्ञात होना चाहिए, कितने रोगों का जन्मदाता है यह आवेश? जरा सा भी प्रतिकूल प्रसंग हुआ और आपको आवेश आ जाता है। यह अज्ञानी का जीवन है। प्रथम श्रेणी के व्यक्ति को आवेश तो आता है लेकिन वह ४८ अन्तर्मुहूर्त में तुरन्त शांत हो जाता है। यदि हम पानी में रेखा खीचें तो वह एक मिनिट भी नहीं रूकती है। किसी से भी कोई बात हो जाए उसे तुरंत भुला दीजिए। गाँठ मत बाँधिए। मन में रखेगें तो उलझन पर उलझन बढ़ती जायेगी। जितना आप सोचोगे उतनी ही चित्त में व्याकुलता एवं अशांति बढ़ेगी।

मध्यम श्रेणी के व्यक्ति को जब आवेश आता है तो अधिक से अधिक 15 दिन भर तक संस्कार रहते हैं। लेकिन अधम या जघन्य प्रवृत्ति के प्राणी कषाय को 6 महीने के लगभग मन में रखे रहते हैं। यदि 6 महीने तक में भी मन के द्वन्द्व निकल गए तो ठीक, नहीं तो वह बैर जन्म-जन्मान्तरों में परिवर्तित हो जाता है। ऐसा व्यक्ति कभी श्रीराम को अपने जीवन में स्वीकार

नहीं कर पाता है, अपने उपास्य के प्रति श्रद्धा समाप्त कर लेता है। क्योंकि परमात्मा की जो भक्ति है, गुरू की जो उपासना है, सद्कार्यों में जो प्रवृत्ति है, उसका मूल उद्देश्य कषायों को कम करना है।

क्रोधी व्यक्ति कभी जीवन में पनप नहीं पाता है। हमेशा रोगी बना रहता है। किसी कवि की पक्तियाँ है–

क्रोध इंसान को शैतान बना देता है।
क्रोध दोस्त को दुश्मन बना देता है।।
अरे! क्रोध के बहाव में बहने वालों।
क्रोध गुलशन को भी वीरान बना देता है।।

रिश्तों में छोटा-बड़ा होना व्यक्ति के स्वाभिमान की कमजोरी है, जो जरा भी अपमानित होने पर टूटने लगते हैं। बसा-बसाया गुलशन वीरान होने लगता है। परिवार में भी तनाव, अस्वस्थता हो जाती है। मन मुटाव, अन्यमनस्कता यह भी रोग ही है। अतः इन परिस्थितियों को हमें शीघ्रता से समाप्त कर आपस में बोलचाल प्रारम्भ कर देना चाहिए। बड़ा वंही है जिसने अपनी गलतियों को स्वीकारा है, अपनी गाँठों को भी खोला है, तनाव को अपने दिल से निकाला है।

अहिंसा विश्वधर्म की जय"

卐 ———————— 卐 ———————— 卐

निजदेहेऽपि स्वामित्वं वञ्चकानां विनश्यति।
दायादाः किन्तु निर्बाधाः स्वर्गभूमेरमायिनः।।

जो दूसरों को छलता है, वह स्वयं अपने शरीर का भी स्वामी नहीं रहने पाता। परन्तु जो सच्चे हैं, उनको स्वर्ग का नित्य उत्तराधिकार रहता है।

卐 卐 卐

विषयी जीवन नरक समान है

तीन भुवन में सार, वीतराग विज्ञानता।
शिवस्वरूप शिवकार, नमहुँ त्रियोग सम्हारिकैं॥

बन्धुओं! जिन्होंने अपने को परमात्म प्रभु के चरणों में समर्पित किया, गहन आस्था की, उन्हें दो बातों का पता चला, दर्शन और ज्ञान। ये अनन्त सुख के हेतु हैं, आत्मा से कभी पृथक नहीं हो सकते। इसलिए आत्म अस्तित्व से सार की डोर कभी नहीं टूट सकती। परमात्मा तुम्हारे अन्तस् में ही है। मात्र अभिव्यक्ति में देरी है, वह भी तुम्हारे कारण। तुम्हारा अहंकार, तुम्हारी वासनायें उसकी अभिव्यक्ति में रोड़ा अटकाती हैं। आत्मिक शाश्वत सुख की बजाय भौतिक सुख को अच्छा मानना मूढ़ता का प्रतीक है।

आप स्वयं सोचें कि जिनकी उपासना हम कर रहे हैं, उनके प्रति हम वास्तव में आस्थावान् हैं या नहीं? अगर वास्तव में आप उनके प्रति श्रद्धा रखते हैं तो कुछ आपके व्यावहारिक जीवन में परिवर्तन होना चाहिए। अगर परिवर्तन नहीं है और उपास्य के प्रति श्रद्धान्वित हैं तो कहीं न कहीं श्रद्धा में कमी है। हमारे शास्त्रों में एक शब्द आता है 'सम्यग्दर्शन' यानि आस्था, विश्वास, श्रद्धा, यह सभी सम्यग्दर्शन की स्थितियाँ हैं। जितना व्यवहार चलता है, वह सब आस्था, विश्वास पर चलता है। प्रथमानुयोग के अनुसार देव, शास्त्र, गुरु पर आस्था विश्वास करना ही सम्यग्दर्शन है। चरणानुयोग में आचार्य समन्तभद्र कहते हैं कि देव, शास्त्र, गुरु के श्रद्धान के साथ अष्टांगों का पालन और पच्चीस दोषों का परित्याग जिसके जीवन में होता है, वह धर्मात्मा सम्यग्दृष्टि आस्थावान् कहलाता है। जब हम करणानुयोग में नेमिचन्द स्वामी की कक्षा में जाते हैं या तिलोयपण्णत्ति, त्रिलोकसार, कर्मकाण्ड में सम्यग्दर्शन की परिभाषा को खोजते हैं तो वहाँ सात प्रकृतियों का उपशम, क्षय, क्षयोपशम का नाम सम्यग्दर्शन है। करणानुयोग धर्मकाँटा है। करणानुयोग का सम्यग्दर्शन है तो सभी सम्यग्दर्शन है, अन्यथा कोई भी सम्यग्दर्शन नहीं है। इसको अन्तरंग कारण माना गया है। द्रव्यानुयोग में तो कहा है—

पर द्रव्यन तैं भिन्न आप में, रूचि सम्यक्त्व भला है,
आप रूप को जानपनों सो, सम्यक् ज्ञान कला है।।
आप रूप में लीन रहे थिर, सम्यक् चारित सोई।
अब व्यवहार मोक्षमग सुनिये, हेतु नियत को होई।।

सम्यग्दृष्टि सांसारिक जीवन में भी सुख की अनुभूति करता है। बाह्य पर-पदार्थों में जो दृष्टि करता है, शरीर और आत्मा को एक मानता है, आचार्यों ने उसे मिथ्यादृष्टि या बहिरात्मा कहा है। भीतर में जिसकी दृष्टि है, वह अन्तरात्मा सम्यग्दृष्टि है। शुभ-अशुभ के विकल्पों से जो अतीत हो गया है, वह आत्मा परमात्मा की स्थिति को प्राप्त करता है। हमारे जीवन में जब संतोष, आदर्श, मानवता का विकास होता है तो हम सम्यग्दर्शन की सीढ़ी चढ़ना आरम्भ करते हैं।

हमें यदि अपने जीवन में शांति चाहिए तो जीवन में विश्वास को स्थान दें। आपने कभी सोचा, आप दुःखी क्यों हैं? आपके मन में किसी के प्रति विश्वास नहीं है। जब जीवन में संदेह या संशय प्रारम्भ होता है तो जीवन बड़ा कष्टमय बन जाता है। जीवन द्वन्दमय बन जाता है। विश्वास यदि आपके जीवन में है तो आपका ट्रीटमेंट किया जा सकता है। यदि विश्वास नहीं है तो ट्रीटमेंट नहीं किया जा सकता है, इलाज सफल नहीं हो सकता है।

पुण्य-पाप के अस्तित्व को भी जीवन में स्वीकार करना चाहिए। स्वर्ग और नरक यह कपोल-कल्पित नहीं है। यह भी सत्य हैं। आत्मा को पुनः-पुनः सांसारिक जीवन में जन्म, वृद्धावस्था और मरणावस्था को प्राप्त होना पड़ता है। जिन्होंने धर्म पुरुषार्थ किया, वे अपने जीवन में सफल हो जाते हैं। सांसारिक जीवन के सम्बन्ध में ''समयसार कलश'' में अमृतचन्द स्वामी की कारिका आती है– सम्यग्दृष्टि की पहचान क्या है? वह कहते हैं–

''सम्यग्दृष्टिः भवति नियतः ज्ञानवैराग्यशक्तिः''

अर्थात् सम्यग्दृष्टि, ज्ञान और वैराग्य की शक्ति से ओतप्रोत होता है। घर गृहस्थी की जिम्मेदारियों को पूरा करके मैं भी हाथों में आहार लेकर भूमि को शैय्या बनाऊँ, ऐसी भर्तृहरि की भावना थी।

सांसारिक जीवन में जब भी विषमताएँ-प्रतिकूलताएँ आती हैं, तभी आपको वैराग्य होता है। अगर परिवार में आपको सभी अनुकूलताएँ हैं तो भगवान से आपको कोई मतलब नहीं रह जाता है। साधु-सन्तों का कोई अर्थ नहीं रह जाता है। संकट के आते ही साधु-संत, परमात्मा दिखाई देने लगते हैं। इसीलिए कबीरदास जी ने कहा है-

दुःख में सुमिरन सब करें, सुख में करे न कोय।
जो सुख में सुमिरन करे, तो दुःख काहे को होय।।

वास्तव में उन्नति का कारण व्यक्ति के जीवन की विपत्तियाँ ही होती हैं। इसीलिए हमें इन विपत्तियों को हँसकर स्वीकार करना चाहिए। यह हमें आने वाले सुखद सूर्य का संकेत देती हैं, क्योंकि-

दुःख सन्ध्या का वह लाल क्षितिज, जिसके पश्चात् सबेरा है।
सुख प्रातः का झुटपुटा समय, जिसके पश्चात् अंधेरा है।।

धर्म शून्य जिस व्यक्ति का जीवन है, वह पापाचार की ओर बढ़ते हुए, स्वार्थ की दुनिया में जीते हुए जीवन को अशांत बना लेते हैं। जितशत्रु नाम के राजा और उनकी रानी बहुत ही विलास प्रिय थे। उनका जीवन खाओ, पियो और मौज करो के सिद्धान्त पर चल रहा था। प्रजा का सारा भार राजा के ऊपर होता है लेकिन राजा प्रजा के समस्त कार्यों को भूलकर भोग विलास के कार्यों में व्यस्ततम रहता था। हर चीज की सीमा हुआ करती है। सीमा के अन्तर्गत ही प्रत्येक कार्य शोभित होता है। नहीं तो वह आपके लिए सिरदर्द बन जाता है।

धर्म हमेशा आपको अति से बचाने का कार्य करता है। आपके जीवन को व्यवस्थित बनाता है, आपको जागरूक करता है, आपके विवेक को जगाता है। इन्द्रियों की गुलामी में अपने आपको मत ले जाइये। विषयों की लालसा में अपने आत्म तत्त्व को मत गर्हित करिए। यह मन और इन्द्रियों की स्वच्छन्द प्रवृत्ति आपको जाने कहाँ ले जाएगी? आपके जीवन की कुछ क्षण की असावधानी आपको मौत की ओर खींच सकती है। ड्राईवर नशे या प्रमाद के कारण गाड़ी चलाते समय यदि थोड़ा चूकता है तो एक्सीडेंट हो

जाता है। गाड़ी के साथ ही जीवन की गाड़ी भी खतरे में पड़ जाती है। जीवन में आपके संयम की अत्यन्त आवश्यकता है।

यह जीवन/शरीर भी एक गाड़ी है। शरीर पर आपका अंकुश है; इन्द्रियों पर आपका अंकुश है तो आप सुरक्षित हैं। यदि आपका जीवन स्वच्छन्द है, चार अंगुल की जिह्वा की खातिर आप भक्ष्य-अभक्ष्य नहीं देखते हैं, विचार-अविचार किये बिना ही जीवन को गर्त में डाल देते हैं तो जीवन रूपी गाड़ी आपको सुरक्षित स्थान तक नहीं पहुँचा सकती। अतः जीवन रूपी गाड़ी में संयम रूपी ब्रेक अति आवश्यक है।

उन राजा-रानी के इस विलासप्रिय जीवन से प्रजा अत्यन्त दुःखी थी। महीने वर्ष बीतते गए। प्रजा उद्वेलित हो उठी। सोते समय राजा-रानी दोनों को उठाकर जंगल में अज्ञातवास के लिए छोड़ दिया। प्रातःकाल जब आँख खुली तो देखा मेरे महल, नौकर, दास-दासियाँ कहाँ हैं? क्या मैं स्वप्न तो नहीं देख रहा हूँ? कुछ क्षण के बाद रानी की भी आँख खुली तो अपने को अत्यन्त असहाय पाया। राजा सोचने लगा कि यह सब मेरे असंयम एवं विलासिता का प्रभाव है। कर्तव्यविमुखता एवं भौतिकतापूर्ण जीवन यापन करने का प्रतिफल ही प्रजा ने मुझे दिया है। वह दोनों जंगल में चले जा रहे थे। रानी को भूख ने सताया। वह एक कदम भी आगे नहीं चल पा रही थी। रसना इन्द्रिय सभी अनर्थों का कारण है। इसीलिए कहते हैं-

"बुभुक्षितः किं न करोति पापम्"

भूखा व्यक्ति क्या-क्या पाप नहीं करता ? अर्थात् सभी पाप करता है। इसीलिए सर्वप्रथम रसना इन्द्रिय पर नियन्त्रण की बात बार-बार कही जाती है। गले के नीचे पहुँचकर तो सब मल ही बनता है। कहावत है-

"घाटी उतरे माटी"

तामसिक भोजन आपके विचारों को अपवित्र करता है। सम्राट अशोक का एक प्रसंग आता है। जब वह भोजन करने बैठे तो पत्नी ने थाली में प्याज परोस दी। उसने कहा कि आप मेरी थाली से प्याज हटा दें। यह तामसिकता को बढ़ाने वाली है। सम्राट होते हुए भी, वैभव का स्वामी होते

हुए भी अपनी इन्द्रियों पर नियंत्रण एवं संस्कृति की रक्षा का ध्यान उसे बराबर था। इसीलिए सम्यग्दृष्टि धर्मात्मा अभक्ष्य पदार्थों का त्याग करता है एवं जीवराशि की हिंसा से बचता है। तामसिक भोजन से आपकी करुणा, दया, वात्सल्य की भावनाओं पर कुठाराघात होता है। प्याज-लहसुन से तामसिक प्रवृत्तियाँ बढ़ती हैं तथा पंचेन्द्रिय जीवों का हनन होता है। कुछ लोगों का कहना है कि प्याज में सिर्फ बदबू का दोष है। लेकिन ऐसा नहीं है। जितना आपका जीवन तामसिक होता जायेगा, पारिवारिक सम्बन्धों पर भी तामसिकता का असर होता जायेगा, जिससे सम्बन्धों पर कुठाराघात होता है एवं परिवार टूटते चले जाते हैं।

आप लोगों की शिकायत है कि धर्म में मन नहीं लगता है। क्रिकेट का मैच आप दो बजे रात तक भी देखते हैं। उस समय निद्रा देवी जाने कहाँ विदा हो जाती है? यदि कहीं पूजा, पाठ या धार्मिक अनुष्टान हो, संतों के प्रवचन हों तो बैठते ही नींद आने लगती है। ऐसा क्यों? अच्छे काम में मन क्यों नहीं लगता है? पानी को नीचे जाने के लिए प्रयास नहीं करना पड़ता है, लेकिन ऊपर जाने के लिए पम्प आदि की आवश्यकता होती है। उसी तरह पतन के लिए तो किसी तरह का प्रयास नहीं करना पड़ता है, किन्तु उत्थान के लिए एड़ी से चोटी तक जोर लगाना पड़ता है। इसलिए अपने खान-पान पर नियंत्रण करें, जिससे कि विचार/भावनाएँ पवित्र हों और धार्मिक कार्यों में आपका मन लगे।

पुराने समय में लोग ठोस आहार लेते थे लेकिन आज स्वाद के चक्कर में समस्त तत्त्व नष्ट हो जाते हैं। स्वाद की तृप्ति के लिए मनुष्य ने अपने स्वास्थ्य की अनदेखी करना शुरू कर दिया है। आज के चाय पीने वालों के चेहरे का तेज गायब हो गया है। कम उम्र में ही चेहरे पर झुर्रियाँ आ जाती हैं।

रानी की असहनीय भूख की पीड़ा को देखकर, व्यामोह में आकर राजा ने अपने शरीर के अवयव उसको सौंपे, तब उसने अपनी क्षुधा शांत की। फिर आगे बढ़ने लगे। दोनों जंगल में आगे बढ़ते जाते हैं और अपने कर्मों के विपाक को सोचकर पछताते जाते हैं। एक नगर में पहुँचने पर

रानी के आभूषण बेचे और एक किराए का मकान लिया। राजा ने छोटी सी नौकरी करके किसी तरह घर का खर्च चलाया। रानी ने कहा कि मैं सारा दिन घर में बोर होती हूँ तो राजा ने एक लंगड़े संगीतकार को घर पर रहने के लिए राजी कर लिया जिसके गाने आदि को सुनकर रानी अपना समय व्यतीत करती। अत्यधिक निकटता से दोनों के विचारों एवं भावों में विकृतियाँ आना शुरु हो गईं। जो राजा प्राणों से प्रिय लगता था, वह अब काँटे सा चुभने लगा।

आप इस स्वार्थी संसार की विचित्रता को देखें। दिन-रात मोह और माया के चक्कर में व्यक्ति पागल हो रहा है। सांसारिक बन्धनों में दिन-रात मेरा-मेरा करते हुए भटक रहा है लेकिन सुख नहीं मिलता। आप पूजन में पढ़ते हैं–

भव-वन में जी भर घूम चुका, कण-कण को जी भर-भर देखा।
मृग सम मृग तृष्णा के पीछे, मुझको न मिली सुख की रेखा।।

सांसारिक जीवन में अनेक प्रकार की वस्तुओं का व्यक्ति उपयोग करता है लेकिन सुख नहीं मिलता। ज्यों-ज्यों प्रयास करता है, त्यों-त्यों इच्छायें बढ़ती जाती हैं। ज्ञानसार में कहा गया है–

सुखिनो विषयैः तृप्ता नेन्द्रोपेन्द्रादयोऽप्यहो।
भिक्षुरेकः सुखी लोके, ज्ञानतृप्तो निरंजन।।

अर्थात् विषय-सुख के सन्तोषी इन्द्र और उपेन्द्र भी सुखी नहीं हैं। जगत में ज्ञान से तृप्त हुआ निरंजन एक भिक्षु मुनि सुखी है। राजा तनावों की दुनिया में फँसता चला गया। जो रानी राजा के बिना एक मिनट नहीं रह पाती थी, जिसने रानी की क्षुधा की शांति के लिए अपने शरीर के अवयवों को सौंप दिया था, उसी रानी ने कृतघ्नता की हद पार कर दी। दानवता का परिचय रानी ने दिया। इसका कारण उसका पूर्व विलासी जीवन ही रहा।

एक बार रानी ने राजा से कहा कि किसी तालाब में स्नान करने के लिए चलते हैं। तालाब पर जैसे ही राजा नहाने के लिए तैयार हुआ, अवसर देखकर रानी ने उसको धक्का दे दिया। यह भी संसार के स्वार्थ की झलक है। जो रानी राजा के लिए सर्वस्व समर्पण के लिए तैयार थी, वह उसी

प्रियतम के जीवन से खेल गई। दुनिया में जब तक जिसके साथ स्वार्थ है, तभी तक सम्बन्ध रखते हैं। स्वार्थ बीतने पर कोई किसी का नहीं होता।

स्त्रियों के लिए तो जगत में शील सबसे बड़ा आभूषण है। नीति शतक में कहा गया है–

''शीलं परं भूषणम्।''

शील जिसके पास है, उसके पास सब कुछ है। जिसका शील भंग होता है, उसके समस्त आभूषण फीके हो जाते हैं। पद्मपुराण में कहा गया है–

''शीलस्य पालनं कुर्वन् यो जीवति सः जीवति''

जो मनुष्य शील की रक्षा करता हुआ जीता है, वास्तव में वही जीता है। व्यक्ति के लिए शील ही घोर जंगल में पथ प्रदर्शक की तरह है। शील रूपी चिंतामणि के नष्ट होने पर क्या-क्या विपरीतता नहीं आती? सती मनोरमा, सती अंजना, सती सीता आदि सभी ने अपने शील की महिमा से प्रतिकूल परिस्थितियों में भी विजय और यश प्राप्त किया। सेठ सुदर्शन के लिए भी शील की महिमा से सूली सिंहासन में परिवर्तित हो गयी थी।

चारित्र मनुष्य का बहुत बड़ा आभूषण है। जिस समाज देश और राष्ट्र में चारित्र को महत्व दिया जाता है, वह समाज, देश, राष्ट्र महान् बनता चला जाता है। इसीलिए प्राण निकलने तक हमें अपने सदाचार की रक्षा करना चाहिए। यही हमारी प्राचीन संस्कृति रही है, क्योंकि–

धन यदि गया, गया नहीं कुछ भी, स्वास्थ्य गया कुछ जाता है।
सदाचार गिर गया मनुष्य का, सर्वस्व ही लुट जाता है।

लक्ष्मण का जीवन शूर्णणखा के अनेक प्रलोभनों के मिलने के वावजूद भी विचलित नहीं हो सका। जब सीता की खोज में लक्ष्मण से पूछा गया कि क्या तुम अपनी भाभी के हार और बाजूबंद को पहचानते हो तो उन्होंने कहा कि मैं तो रोज उनके चरणों की वन्दना करता था। मैं बिछिया के अतिरिक्त कुछ नहीं पहचान सकता। यह है लक्ष्मण का आदर्श। क्या आपने लक्ष्मण की दृष्टि सीखी? जिसकी दृष्टि खोटी है, जिसकी दृष्टि में विकार है, वह आदमी शांति नहीं पा सकता। हमें भी अपने जीवन में शील को स्थान देना चाहिए।

राजुल के ज़ीवन का प्रसंग आता है। जब नेमिकुमार ने तोरण तोड़कर रथ को मोड़ा तो माँ-पिताजी कहते हैं कि तुम्हारी दूसरी शादी कर देंगे। हम सभी जानते हैं कि भारतीय नारी का यह आदर्श रहा है कि जिसे स्वप्न में एक बार भी पति स्वीकार कर लिया, उसके अतिरिक्त दूसरे के बारे में नहीं सोचती। नारियों का आदर्श राजुल ने भी प्रस्तुत किया। वह कहती है–

चूड़ी उतारो, साड़ी उतारो, उतारो सब श्रृंगार रे।
मत ना माँग भरो तुम सखियों, जाऊँगी गिरनार रे।
कोई चल के आज बता दे गिरवर की डगरिया।
जंगल-जंगल, पर्वत-पर्वत ढूंढूँ रे सांवरिया।।

शादी होगी तो नेमिकुमार के साथ, अन्यथा जिस मार्ग का अनुकरण नेमिकुमार ने किया उसी मार्ग पर चलूँगी। ऐसा कहकर राजुल ने अपने कदम वैराग्य की ओर बढ़ा दिये और चिंतनधारा शुरु हो जाती है कि अनन्तकाल इन भोगविलासों में बीत गया, किन्तु आत्मिक सुख नहीं मिला। संत तुलसीदास जी कहते हैं–

हाले फूले हम फिरें होत हमारो ब्याह।
तुलसी गाय बजाय के देत काठ में पाँव।।

शादी से पहले बड़े अरमान रहते हैं। लेकिन बाद में आँसू बहाने के अलावा कुछ नहीं मिलता। दो से चार और चार से अष्ट पद हो गए तो गृहस्थी का निर्वाह भी मुश्किल हो जाता है। जिन्होंने इससे छुटकारा पाया, वे महान् हो गए।

हाथी स्पर्शन इन्द्रिय के कारण जीवन समाप्त करता है। मछली रसना इन्द्रिय के कारण जाल में फँसती है। भौंरा घ्राण इन्द्रिय के कारण फूल में बन्द हो जाता है। चक्षु इन्द्रिय के कारण पतंगे मर जाते हैं। कर्ण इन्द्रिय के कारण हिरण मारा जाता है। एक-एक इन्द्रिय के चक्कर में जब महान् कष्ट होता है तो फिर नित्य ही पाँचों इन्द्रियों का जो सेवन करते हैं तो उसका क्या हाल होगा, यह चिंतनीय है।

राजा को तालाब में धक्का देकर रानी ने सोच लिया कि राजा तो मर गया है। वह बहुत खुश हुई। वह उस अपंग को लेकर गाँव-गाँव में घूमकर

अपना खर्च चलाती थी। कहते हैं–

स्त्री चरित्रं पुरूषस्य भाग्यं, देवो न जानाति कुतो मनुष्यः।

वह राजा तैरना जानता था। किसी तरह से दूसरे किनारे लग गया। वह तालाब के किनारे बैठा हुआ था। उस गाँव का राजा मर गया था, उसकी कोई संतान नहीं थी। वहाँ की प्रजा ने हाथी की सूँड में एक माला देकर कहा कि यह जिसके गले में माला डाल देगा, उसी का राज्याभिषेक कर दिया जाएगा। हाथी ने उसी राजा के गले में माला डाल दी। पुनः उसका राज्याभिषेक हो गया।

भाग्य की विडम्बना देखिए। वह रानी अपंग को लेकर उसी राजा की सभा में आई। जब वह बोलती थी कि मेरे माता-पिता ने मेरे साथ अन्याय किया, अपंग से ब्याह किया तो लोग सहानुभूतिवश मुक्त हस्त से दान देते थे। जब उसने राज्यसभा में भी वही वृतान्त सुनाया तो राजा ने कहा, क्या तुम्हें मालूम है जिसको तुमने नदी में गिरा दिया था वह तुम्हारा कौन था? जैसे ही उसने सुना, अचम्भित हो गई। राजा ने उन दोनों का काला मुँह करके देश के बाहर निकाल दिया।

बन्धुओं! यह है विलासी जीवन की कहानी। हमें इससे सीख लेनी चाहिए। जीवन में संयम का पालन करना चाहिए। शील-धर्म की रक्षा प्राण देकर भी करना चाहिए। जीवन को त्याग की साधना से युक्त बनायें। संयम का आनन्द अभी आपने लिया नहीं है, योग का रस आपने अभी चखा नहीं है। सिर्फ इन्द्रियों और शरीर की गुलामी की है। बस इतना याद रखो कि विषय भोग के वृक्ष पर दुःख के शूल उगेंगे और रत्नत्रय के वृक्ष पर परमात्मा के फूल खिलेंगे। तुम्हारा भविष्य तुम्हारे भीतर पड़ा है, तुम ही उसके मालिक हो। सुकौशल मुनि ने जैसे अपनी अनंत संभावना को जाना और व्यक्त किया, वैसे तुम भी अपना उत्थान कर सकते हो, आत्मशक्ति तो सबमें समान है।

"अहिंसा विश्वधर्म की जय"

卐 ——— 卐 ——— 卐

दिन में भोजन का विज्ञान

सकल ज्ञेय ज्ञायक तदपि, निजानंद रसलीन।
सो जिनेन्द्र जयवंत नित, अरि रज रहस विहीन॥

बन्धुओं! अहिंसा की बुनियाद पर ही भारतीय संस्कृति ने विश्व के जनमानस को अपनी ओर आकर्षित किया और विदेशी धरती पर भारत के संतों को सम्मान मिला। पर दुर्भाग्य से धर्म सूर्य पर हिंसा, घृणा, स्वार्थपरता एवं आतंकवाद का ग्रहण लग गया है और रक्षक ही भक्षक बन गया है। धर्म सूर्य से चमकते हुए भारत देश में फैशन के नाम पर संस्कृति की उपेक्षा की जा रही है। लेकिन हमें यह बात अच्छी तरह से जान लेनी चाहिए कि कोई भी संस्कृति, सांस्कृतिक मूल्यों के बिना जिंदा नहीं रह सकती।

जैन श्रावक की पहचान छना पानी, देव दर्शन एवं रात्रि भोजन त्याग से होती है। आप किसी समुदाय में बैठकर इन तीनों में यदि एक का नाम लोगे कि मैं रात्रि भोजन नहीं करता तो लोगों के मुँह से अनायास ही यह शब्द निकलेंगे कि क्या आप जैन हैं? हमारे आचरण से हमारी पहचान जन-जन के मस्तिष्क में गहराई तक पैठ बनाये हुए हैं। लेकिन दुर्भाग्य है कि आज हमारी युवा पीढ़ी पथ-भ्रमित हो रही है, संस्कारहीनता एवं आचरणहीनता के द्वारा अपनी पहचान को खो रही है।

हमारे आगम ग्रन्थ, श्रावकाचार एवं साधु बार-बार हमें रात्रि भोजन-त्याग का उपदेश देते हैं, हमें सचेत करते हैं, उसके दुष्परिणामों से। हमारे विज्ञान के छात्र आज अनेक प्रकार के कुतर्क करते हैं कि पुराकाल में रोशनी की उचित व्यवस्था न होने के कारण रात्रि-भोजन त्याग के लिए कहा जाता था, लेकिन आजकल तो प्रकाश की अधिक से अधिक व्यवस्था हमें उपलब्ध है। अतः रात्रि भोजन करने से जीवों को घात नहीं होता। यह कहना नितांत गलत है।

विज्ञान को जानने वाले यह बात अच्छी तरह से जानते होंगे कि प्रकाश हमें सूर्य से, चन्द्र से, ताराओं से, बिजली के बल्ब से, गैस व मोमबत्ती जलाने तथा अन्य कई प्रकार से प्राप्त होता है। प्रकाश प्राप्त करने के यह

सभी साधन वास्तव में ईकाई या ELEMENT नहीं है वरन् स्कन्ध या मिश्रण या COMPOUNDS है। एक तिकोने काँच या PRISM की सहायता से हम प्रत्येक प्रकाश के अंशों का ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। जब हम सूर्य के प्रकाश की एक किरण को प्रिज्म से गुजारते हैं तो वह किरण क्रम से नौ अंशों में विभाजित हो जाती है। इन नौ के नौ अंशों को SPACTRUM कहते हैं। इन नौ अंशों के बीच के सात अंशों को हम लाल, पीले, नीले, बैंगनी आदि रंग की किरणों के रूप में आँख से देख सकते हैं। पर किनारे के दो अंश देखे नहीं जा सकते। इन दोनों के सद्भाव का निर्णय इनकी गर्मी को महसूस करके किया जा सकता है। लाल रंग की किरण के बाहर का अंश इंफ्रारैड (INFRA-RED) और बैंगनी किरण के बाहर का अंश अल्ट्रा वायलेट (ULTRA-VIOLET) कहा जाता है। बीच की सातों रंगीन किरणों के रंग ठीक वही हैं जो आकाशीय इन्द्रधनुष के हैं। यह सब की सब किरणें गरम नहीं है।

रिफ्रेक्शन ऑफ लाइट (REFRACTION OF LIGHT) के कारण यह पाया जाता है कि सूर्य अपने उदय काल से एक मुहूर्त (48 मिनिट) पहले दिखने लग जाता है और वास्तविक अस्तकाल के एक मुहूर्त के पश्चात् भी दिखता रहता है। अतः प्रत्येक प्राणी को सूर्य उदय के 48 मिनिट पश्चात् एवं सूर्यास्त के 48 मिनिट पूर्व खा लेना चाहिए। ऐसा करने से भोजन पूर्ण रूप से हजम होगा और शरीर बलवान बनेगा।

आप मुनियों की चर्या देखते हैं। जब कोई मुनि आहार लेते हैं तो लाइट नहीं जलाते हैं। कहीं धोखे से स्विच ऑन हो जाए तो तुरंत बैठ जायेंगे। उनको एक मिनिट का भी समय नहीं लगता। मुनिराज जिन्हें सत्य से परिचय हुआ है, वह निरन्तर उस शुद्धोपयोग की साधना के माध्यम से विकारी तत्वों को दूर करने में तल्लीन रहते हैं। आत्मा के आत्म रहस्यों का उद्घाटन उनके द्वारा होता है। सोने से 4–5 घंटे पहले भोजन कर लेना चाहिए, यह शरीर शास्त्रियों का कहना है। लेकिन इस नाश्ता पद्धति ने ऐसा नाश किया है कि इसी के कारण दोपहर का खाना देर से होता है और फिर रात्रि को 8–10 या 12 बजे तक शाम का खाना चलता है। सूत्र ग्रन्थों में एक सूत्र आता है–

अत्थं गयंमि आइच्चे , पुरत्था य अणुग्गए।
आहारमाइयं सव्वं , भणसा वि न पत्थए।।
पाणिवह-मुसावायाऽदत्त मेहुण-परिग्गहा विरओ।
राइभोयणविरओ , जीवो भवई अणासवो।।

अर्थात् सूर्योदय के पहले और सूर्यास्त के बाद श्रेयार्थी को सभी प्रकार के भोजन, पान आदि की मन से भी इच्छा नहीं करनी चाहिए। हिंसा, असत्य, चौरी, मैथुन, परिग्रह और रात्रि भोजन से जो जीवन विरत रहता है, वह निरास्रव अर्थात् निर्दोष हो जाता है।

सूर्योदय के साथ ही हमारी दिनचर्या आरम्भ हो जाती है। सुबह होते ही पशु-पक्षी जाग जाते हैं, सोये हुए पौधे जग जाते हैं, फूल खिलने लगते हैं, पक्षी गीत गाने लगते हैं। सूर्योदय का अर्थ केवल सूर्य का निकलना नहीं अपितु जीवन का जागना और फैलना है। इसी तरह सूर्यास्त से तात्पर्य जीवन के सिकुड़ने या विश्राम से है। इसलिए सूर्योदय के साथ तो भोजन की सार्थकता है क्योंकि कार्य के लिए शक्ति की आवश्यकता होती है लेकिन सूर्यास्त के बाद किया गया भोजन हमारे विश्राम में बाधक होता है। जैसे ही भोजन हमारे गले के नीचे उतरता है, हमारी इन्द्रियों एवं मांसपेशियों का कार्य शुरू हो जाता है। हमारे शरीर का रोया-रोया इसको पचाने में लग जाता है। इसी कारण हम रात्रि को पूर्ण विश्राम का अनुभव नहीं कर पाते हैं, स्वप्न एवं अनिद्रा के शिकार होते हैं।

जब सूर्य उगता है तो प्राण वायु की मात्रा बढ़ती है। श्रम करने के लिए प्राण वायु अत्यन्त आवश्यक है। जब रात्रि होती है तो हवा में प्राण वायु का औसत गिर जाता है, कार्बन-डाई ऑक्साइड की मात्रा बढ़ जाती है। कार्बन-डाई ऑक्साइड के साथ भोजन पचाना मुश्किल होता है।

मनोवैज्ञानिकों का भी ऐसा मानना है कि हमारे दु:स्वपनों का कारण हमारे पेट में पड़ा हुआ भोजन है। हमारी निद्रा की जो अस्त-व्यस्तता है, वह भी रात्रि भोजन के कारण है। दिन भर कार्य करने के बाद जब शरीर को विश्राम की आवश्यकता होती है, तब आपके पेट को भोजन पचाने के लिए रात को भी श्रम करना पड़ता है, जो कि उचित नहीं है। आप रात्रि भोजन कर शरीर के साथ न्याय नहीं, अन्याय करते हैं।

आपको ज्ञात है कि मर्यादा के अन्दर कोई बात होती है तो ठीक है, नहीं तो यह शरीर भी शीघ्र ही जवाब दे जाता है। वृक्षों की जो ऑक्सीजन गैस है, वही भोजन पचाने में सहायक होती है। सूर्य की किरणें आपके भोजन को शुद्ध रखती हैं। रात्रि भोजन के कारण जब भोजन पेट में सड़ेगा तो गैस की बीमारी आपकी मेहमान बन जायेगी, जिससे कि आपको जल्दी-जल्दी डॉक्टर के यहाँ जाना पड़ेगा। दिन में भोजन करने से आपका स्वास्थ्य ठीक रहेगा, रात्रि को पूर्ण विश्राम के साथ निद्रा ले सकेंगे। शर्ट की जेब में गोलियाँ डालकर भी नहीं चलना पड़ेगा।

घर गृहस्थी के कार्य में दिन में भोजन करने से सुविधा होती है। महिलायें शाम को समय से जल्दी फुर्सत पा जाती हैं। वह अपने बचे हुए समय में धार्मिक कार्य, आरती, स्वाध्याय आदि कर जीवन में श्रेष्ठता को स्थान दे सकती हैं, व्यक्तित्व का विकास कर सकती हैं।

सोमा सती के जीवन का प्रसंग आपको ज्ञात होगा। विवाह के बाद जब वह ससुराल पहुँचती है तो सास कहती है कि मैं तुम्हें सभी के साथ रात्रि में भोजन कराऊँगी, लेकिन वह रात्रि भोजन से इंकार कर देती है। वह अपने नियम, व्रत, संकल्प पर दृढ़ रहती है। कई दिन गुजरने के बाद भी जब उसने भोजन नहीं किया तो ससुर को चिन्ता हुई और उन्होंने कहा कि ठीक है, नहीं मानती है तो दिन में भोजन करा दो। सास जी ने कहा कि इस घर के अनुसार चलना होगा। परन्तु उसने प्रतिकूलताओं में भी अपने व्रत को नहीं तोड़ा क्योंकि यही छोटे-छोटे नियम एवं संकल्प हमारे मनोबल एवं आत्मविश्वास को जगाने में बहुत सहायक होते हैं।

उसके पति ने सोचा कि इसके कारण तो परिवार मे बहुत अशांति है। उसने एक षड्यंत्र रचा। इस संसार की दशा अत्यन्त विचित्र है–

सुर असुर खगाधिप जेते, मृग ज्यों हरि काल दलेते।
मणि मंत्र तन्त्र बहु होई, मरतें न बचावै कोई॥

इस संसार में जिसने भी जन्म लिया है, सभी को जाना है। थोड़े से जीवन में व्यक्ति क्या-क्या अन्याय नहीं करता? यह जीवन तो प्रभु की भक्ति के लिए मिला है। यह जीवन तो माता-पिता, सास, ससुर की सेवा

के लिए मिला है। केवल भोगों को भोगने और संसार के माया-चक्र में भटकने के लिए नहीं मिला है।

उसका पति जंगल में गया और एक सपेरे को कुछ इनाम देकर एक सर्प को घड़े में लाकर कमरे में रख दिया। आप सोचिए, जीवन भर साथ निभाने की कसम खाने वाला, वायदा करने वाला वह पति आज प्राणों को लेने के लिए तैयार है। इस संसार में जब तक स्वार्थो की पूर्ति होती है, तब तक ही सम्बन्ध जीवित रहते हैं अन्यथा व्यक्ति एक दूसरे को देखना भी पसन्द नहीं करते। अनेक ऐसे प्रसंग आप सुनते-पढ़ते हैं कि कभी गुस्से में पति पत्नी को पीटता है तो कभी पत्नी अपने पति को विष देकर मारती है। आवेश में व्यक्ति अपना भला-बुरा नहीं सोच पाता है और अनर्थ कर डालता है। अगर आपके संस्कार धार्मिक हैं तो ऐसी परिस्थितियाँ नहीं बन पाती हैं, क्योंकि धार्मिक संस्कारों में आपका विवेक जागृत रहता है। परन्तु सोमा का पति धार्मिक संस्कारों से संस्कारित नहीं था, इसलिए पत्नी के प्रति बुरे भावों से भर जाता है।

पति ने पत्नी से कहा कि मै तुम्हारे लिए हार लाया हूँ। वह अत्यन्त प्रसन्न हुई। उसने सोचा कि हार अत्यन्त सुन्दर होगा, पहले पति को पहना कर ही मैं पहनूँगी। वह जैसे ही घड़े में हाथ डालती है तो वह नाग हार बन जाता है, लेकिन जैसे ही वह हार को पति के गले में डालती है तो वह सर्प बनकर उसको डस लेता है।

यह सब उसके नियम संकल्प के महात्म्य का प्रभाव था कि नाग भी उसके लिए हार बन गया। यह नियम-संकल्प लौकिक एवं पारलौकिक दोनों ही जीवन में महती भूमिका निभाते हैं। इनका पालन आपके परिवार, समाज एवं व्यापार की दृष्टि से भी अत्यन्त महत्वपूर्ण है। यह नियम व्रत केवल जड़ की क्रिया नहीं है। यह आत्मा को शुद्ध एवं पावन बनाने में माध्यम बनते हैं। यह नियम एवं व्रत आपके जीवन की काया पलट कर सकते हैं। इसलिए कभी भी अपने संकल्पित व्रत, नियम को तोड़ना नहीं चाहिए। इससे आपका मनोबल टूटता है, आपके विश्वास में कमी आती है।

आज कल लोग इन वातों पर विश्वास नहीं करते हैं। लेकिन धर्म तो विश्वास एवं श्रद्धा पर टिका हुआ है। जिनका धर्म के प्रति, परमात्मा के प्रति समर्पण है, वे आज भी उस प्रकार की शक्तियों की अनुभूति करते हैं।

जैसे ही उसके पति को सर्प ने डसा, सारे परिवार ने उसको कुलटा, डायन कहना शुरू कर दिया। उसके शव को राजा के पास ले जाया गया। राजा ने सोचा यह स्त्री है, यदि अपने पति को मारना ही चाहती तो कोई घरेलू अस्त्र का उपयोग करती, यह सर्प कहाँ से लायेगी? निश्चित रूप से इसमे कुछ रहस्य है। राजा ने पुत्रवधू को बुलाया। वधू ने समस्त वृतान्त जैसा का तैसा सुनाया लेकिन जब बहुमत में सभी व्यक्ति एक ही बात कहें तो वह भी सच जैसा प्रतीत होने लगता है।

सर्प वाले को बुलाया गया। उसने भी सच-सच बात वता दी। राजा ने पुत्रवधू से कहा कि अगर तेरे धर्म में शक्ति है तो अपनी शक्ति से इस पति को जीवित कर दे, तभी लोग विश्वास करेंगे। वधू ने कहा कि अगर मेरे पतिदेव जीवित हो जाते हैं तो समस्त राज्य क्षेत्र में जिनमंदिर बनवाकर धर्म ध्वजा फहरानी होगी, प्रभु के प्रति एवं धर्म के प्रति श्रद्धा करनी होगी। वह मंदिर आती है एवं प्रभु के चरणों में प्रतिज्ञा करती है कि यदि मेरे पति जीवित हो गए तो मैं इन ईंट चूने के महलों में नहीं अपितु मोक्ष महल के पथ का अनुसरण करूँगी। वह ईश्वर के समक्ष णमोकार मंत्र का पाठ करती है। एक बार, दो बार पढ़ती है, तीसरी बार पढ़ते ही उसकी आँखे खुलना प्रारम्भ हो जाती हैं। जैसे बालक सोकर उठता है, वैसे ही वह उठकर बैठ गया। समस्त परिवार एवं पुरजन पश्चाताप की अग्नि में जलते हैं। उससे घर वापिस लौटने के लिए कहते हैं। लेकिन वह साफ इंकार कर देती है। वह इस संसार के वैभव को अच्छी प्रकार देख एवं समझ चुकी थी, बस, अब आत्म वैभव को अंगीकार करने की लगन मन में थी।

हमारे साहित्य में ''शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनं'' कहा जाता है। शरीर धर्म साधना का पहला साधन है। जैसे बिना पेट्रोल के गाड़ी नहीं चलती, वैसे ही बिना भोजन के शरीर नहीं चलता। यदि पेट्रोल से चलने वाली गाड़ी को डीजल या केरोसिन से चलाया जाए तो गाड़ी खराब हो जाती है। उसी प्रकार शुद्ध सात्विक भोजन से ही शरीर स्वस्थ रहता है, तामसिक और राजसिक

भोजन से नहीं। तामसिक भोजन हमारे शरीर को अस्वस्थ कर हमारे मन को भी विकृत कर देता है। तात्पर्य यह है कि भोजन का हमारे शरीर पर एवं आहार का हमारे व्यवहार पर असर होता है। इसलिए जैनधर्म आत्मसाधना के साथ-साथ खाने-पीने जैसी क्रियाओं पर भी जोर देता है।

सोमा सती ने बाल्यावस्था में छोटा सा नियम लिया था। उसके प्रभाव से वह प्रत्येक व्यक्ति के मन और जिह्वा पर विराजमान है। प्रत्येक सती नारी ने अपने किसी न किसी नियम के प्रभाव से इस संसार में यश प्राप्त किया एवं कीर्तिमान स्थापित किए। अतः आप सभी को भी रात्रि भोजन-त्याग का संकल्प लेना चाहिए एवं अपने नियम का पालन कर अपने मनोबल को बढ़ाना चाहिए जिससे कि ऊँचा मनोबल एवं धार्मिक शक्ति भविष्य में आपकी भी रक्षा करे। आप भी मोक्ष पथ पर अग्रसर हो सकें।

सन्तों के प्रवचन सुने, जिनने नित्य अनेक।
पृथ्वी में है देवता, नर रूपी वे एक।।

देखो, जिन लोगों ने बहुत से उपदेशों को सुना है, वे पृथ्वी पर प्रत्यक्ष देवतास्वरूप हैं।

श्रवण मनन जिसने किया, शास्त्रों का विधिवार।
करे न वह बुध भूलकर, निन्द्य वचन व्यवहार।।

जिस पुरूष ने खूब मनन किया है और बुद्धिमानों के वचनों को सुन सुनकर अनेक उपदेशों को जमा कर लिया है, वह भूल से भी कभी निरर्थक तथा बहियात बातें नहीं करता।

विद्यार्थी जीवन और व्यक्तित्व विकास

अज्ञान तिमिरान्धानां, ज्ञानाञ्जन शलाकया।
चक्षुरून्मीलितं येन, तस्मै श्री गुरवे नमः।।

बन्धुओं एक प्रसंग आता है कि–

विद्या ह्वै ब्राह्मणमाजगाम गोपाय मा शेवयिष्टेऽहमस्मि।
असूयमकायानृजवेऽयताय न मा ब्रूया वीर्यवती तथा स्याम्।।

अर्थात् विद्या ब्राह्मण के पास गई, बोली मेरी रक्षा करो। मै तुम्हारी सेवा करने वाली हूँ, मुझे ईर्ष्या, असूया रखने वाले धूर्त और असंयमी को मत देना। इस रूप में मैं प्रभावयुक्त रहूँगी।

कहने का तात्पर्य है कि विद्या भी ईर्ष्या, असूया, असंयमी व्यक्ति के पास जाना नहीं चाहती। इस कथन से हमारे छात्रों को सीख लेनी चाहिए कि एक विद्यार्थी का, शिक्षार्थी का जीवन कैसा होना चाहिए? विद्यार्थी जीवन के बारे में महाभारत में कहा गया है–

सुखार्थिनः कुतो विद्या, नास्ति विद्यार्थिनः सुखम्।
सुखार्थी वा त्यजेद् विद्यां, विद्यार्थी वा त्यजेद् सुखम्।।

अर्थात् सुखेच्छुक को विद्या कहाँ और विद्यार्थी को सुख कहाँ? सुखार्थी को विद्या का त्याग कर देना चाहिए और विद्यार्थी को सुख का त्याग कर देना चाहिए।

लेकिन आज छात्रों के नैतिक एवं सामाजिक स्तर में गिरावट आई है। आज शिक्षण संस्थायें तो बहुत खुल गई हैं, शिक्षक भी कदम–कदम पर मिल जाते हैं लेकिन गुणात्मकता का अभाव शिष्य एवं गुरू के बीच दिखाई देता है। आज न तो उस तरह के गुरूकुल हैं और न ही वैसे शिष्य और न ही उन्हें शिक्षा देने वाले संत महर्षि। रोजी रोटी के माध्यम से शिक्षा देने वाले शिक्षक अपने छात्र के प्रति कितना न्याय कर पायेंगे, यह एक ज्वलन्त प्रश्न है?

जिस देश में अनुशासन है, विद्यार्थी अनुशासित है तथा शिक्षक के आचरण में अनुशासन झलकता है, वह संस्था और देश आज भी उ़न्नति के

शिखर पर है। लेकिन आज शिक्षक अपने कर्त्तव्य से दूर होता जा रहा है। विद्यार्थी अपने कर्त्तव्य से विमुख होते जा रहे हैं। इसलिए छात्र जीवन में नैतिकता का पतन हुआ है। विकास के नाम पर आज पाठ्यक्रमों में भी तरह-तरह के परिवर्तन किये जा रहे हैं। शिक्षाप्रद कविताएँ, कहानियाँ, पाठ्यक्रमों से निकालकर अब सिर्फ जानकारी देना मात्र उद्देश्य रह गया है। पाठ्यक्रमों से संस्कृति, नैतिकता, बोध एवं हृदय परिवर्तन करने वाले पाठ्यक्रम विलुप्त हो रहे हैं। साइंस के साथ-साथ संस्कृति एवं साहित्य का रस जब तक नहीं जुड़ेगा, तब तक आप अपनी अस्मिता को सुरक्षित नहीं कर पायेंगे। आज कुछ गिने-चुने विद्यार्थी ही साहित्य की कक्षाओं में देखे जाते हैं। साहित्य एवं संस्कृति का अध्ययन किये बिना छात्र अपनी संस्कृति से परिचित नहीं होता है।

प्राचीन समय में छात्रों को शिक्षा प्राप्ति के लिए गुरूकुलों में भेजा जाता था। वहाँ राजा और रंक एक सा जीवन यापन करते हुए समान रूप से शिक्षा ग्रहण करते थे। महर्षि सन्दीपनी ऋषि के आश्रम में सुदामा और श्रीकृष्ण का छात्र जीवन इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है। कौरवों और पाण्डवों ने एक साथ गुरूकुल में शिक्षा प्राप्त की थी। विद्या के माध्यम से ही व्यक्ति के जीवन का विकास एवं उन्नति सम्भव है। बिना ज्ञान के कभी किसी का जीवन महान् नहीं बन पाया है। शिक्षक एवं छात्र में पिता-पुत्र का सम्बन्ध होता है। नीतिवाक्यामृतम् में कहा गया है-

"पितरमिव गुरूमुचरेत्"

अर्थात् शिष्य गुरू के साथ पिता के समान व्यवहार करे। चाणक्य सूत्र में कहा जाता है कि-

"गुरूवशानुवर्ती शिष्यः"

अर्थात् शिष्य को गुरू की इच्छा का अनुवर्ती होना चाहिए।

जो शिक्षक स्वयं अनुशासित होंगे, वह छात्र को भी अनुशासित रखने में सफल होंगे। इसी वसुन्धरा पर महात्मा कबीर, संत सूरदास, संत तुलसीदास, विवेकानन्द, महात्मा गाँधी, सुभाषचन्द्र बोस आदि अनेक महापुरूष हुए हैं, जिन्होंने अपने ज्ञान के वैभव से इस देश में कीर्तिमान स्थापित किए हैं। छात्र राष्ट्र की सम्पत्ति होते हैं। अगर छात्रों में अनुशासन है, पढ़ने में रूचि है एवं

गुरू के प्रति सम्पूर्ण समर्पण है तो वह राष्ट्र कभी भी निर्बल नहीं हो सकता है। विद्याध्ययन की पहली शर्त है, गुरू के प्रति समर्पण। तभी गुरूगत समस्त विद्या को शिष्य धीरे-धीरे आत्मसात् करता है। मनुस्मृति में कहा है-

यथा खनन् खनित्रेण नरोवायधिगच्छति।
तथा गुरूगतां विद्यां शुश्रूषुरधिगच्छति।।

जैसे कुदाल से खोदते-खोदते मनुष्य जल प्राप्त कर लेता है, वैसे ही सेवाभावी शिष्य गुरूगत विद्या को प्राप्त कर लेता है।

मात्र धन-धान्य एवं सम्पत्ति किसी राष्ट्र को महान एवं बड़ा नहीं बनाते हैं। जिस देश में सदाचार, नैतिकता एवं देशभक्ति से ओतप्रोत युवा शक्ति है, वह सचमुच एक सम्पन्नशाली देश का गौरव है। घर और परिवार के उपरान्त आज भी छात्रों का अधिकांश समय अपने गुरू के साथ गुजरता है। गुरू मुख से प्राप्त ज्ञान अच्छी प्रकार से एवं शीघ्रता से कंठस्थ होता है। कदम-कदम पर हमें उनके ज्ञान, वैभव एवं अनुभव का लाभ प्राप्त होता है। इसलिए "यशस्तिलक चम्पू" में कहा गया है-

"विद्यालाभो गुरोर्वशात्"

अर्थात् विद्या की प्राप्ति गुरू से ही होती है। "समाधिशतक" में तो यहाँ तक कहा है कि हमें वही बोलना चाहिए, वहीं दूसरों से पूछना चाहिए, उसी की रक्षा करनी चाहिए जिससे अपना अविद्यामय रूप विद्यामय बन जाये।

परन्तु आज शिक्षक के सम्मान में बहुत कमी आई है। पहले छात्र शिक्षक का सामना नहीं कर पाते थे। गुरू यदि किसी रास्ते से जा रहे हों तो निकलने में भी संकोच करते थे। आज स्थिति विपरीत है। आज छात्रों से शिक्षकों को डरना पड़ता है। छात्रों ने संगठन के नाम पर उद्दण्डता का सहारा लिया है। शिक्षकों ने अपनी मर्यादाओं को तोड़कर उनके साथ व्यवहार किया है जिससे कि उनके बहुमान में कमी आई है। ट्यूशन पद्धति से भी शिक्षक का बहुमान गिरा है। आज छात्र समझता है कि पैसे देकर मैने शिक्षक को खरीद लिया है और वह उनका सम्मान करना भूल जाता है।

आज छात्रों के खर्च अधिक बढ़ गए हैं। दिन-रात गाड़ियों पर घूमने और फैशनपरस्ती में समय जाता है। कक्षाओं में जाना अपनी शान के खिलाफ समझते हैं। कक्षाओं में उपस्थिति नाम मात्र को रह गई है। माता-पिता समझते

हैं कि बेटा पढ-लिखकर कॉलेज से आया है, लेकिन जब परीक्षा परिणाम आता है तो अपना सिर धुन लेते हैं। आज की इसी विडम्बना का चित्रण निम्न पंक्तियों में किया गया है–

डैडी आस लगाए, बेटा पढ़ लिख जाए,
ऊँचा नाम कमाये, अफसर बन जाये
करे कॉलेज अटेन्ड, पहने कोट और पैन्ट
फैशन में हीरो, पढ़ने में जीरो
बाप करे कमाई, बेटा करे सप्लाई
इन्हें अफसर कौन बनाए, कि बेटा-बाप की समझ में न आये
लो खरी ये बात सुनाऊँ, जरा मंदिर तक ले जाऊँ
कि थोड़ी-थोड़ी समझ तो आये तुझको।

यदि इसी तरह का विद्यार्थी जीवन रहा तो जीवन अन्धकारमय बन जाता है। जिसको कुछ पाने की इच्छा है, लालसा है, उन्हें अपने जीवन में सदाचार को स्थान देना चाहिए, क्लास में एकाग्रचित्त होकर अध्ययन करना चाहिए। गुरू मुख से सुनी हुई वाणी चित्त में स्थायी रूप से अपना स्थान बनाती है। जो छात्र अधिक देर तक सोते रहते हैं, उनकी बौद्धिक शक्ति कम हो जाती है, स्मरण शक्ति घटती है। जल्दी सोना और उठना यह छात्र जीवन के लिए अत्यन्त आवश्यक सूत्र है। कहा गया है–

काक चेष्टा बको ध्यानं, श्वाननिद्रा तथैव च।
अल्पाहारी गृहत्यागी, विद्यार्थी पंचलक्षणम्।।

समय की कीमत आप नहीं करेंगे तो समय भी आपकी कीमत नहीं करेगा। देखते ही देखते समय गुजरता जाता है और परीक्षा सिर पर आ जाती है। आपको अपनी मस्ती में समय का ध्यान नहीं रहता, फिर पछताते हैं। एक महीने में वर्ष भर का पाठ्यक्रम तैयार करना चाहते हैं। परीक्षा समय में जब अधिक मेहनत करते हैं तो परीक्षा हॉल में नींद आती है, चक्कर आते हैं, और कभी-कभी तो इतने बीमार हो जाते हैं कि परीक्षा भी नहीं दे पाते, जिससे कि आपका एक वर्ष का समय और मेहनत व्यर्थ हो जाती है। यदि किसी तरह परीक्षा दे भी लेते हैं तो परीक्षाफल अच्छा नहीं आता है।

अतः विद्यार्थी जीवन में हमें सदाचार का पालन कर समय का सदुपयोग करना चाहिए। समय सारिणी बनाकर अपने विषय की तैयारी तन-मन से करना चाहिए। ''पद्मपुराण'' में कहा है–

''विद्याधर्मावगाहश्च जायतेऽवहितात्मनाम्''

अर्थात् विद्या और धर्म की प्राप्ति स्थिर चित्त वालों की होती है।

अपने मन को स्थिर कर गुरू के प्रति समर्पण जो करता है, वह ज्ञान को प्राप्त करता है। ''आदिपुराण'' में कहा गया है–

''सम्यगाराधिता विद्या देवता कामदायिनी''

अर्थात् विद्या, देवता की सम्यक् विधि से आराधना करने पर इच्छित फल प्रदान करती है। ''पद्मपुराण'' हमें लगातार विद्या के अभ्यास के लिए सतर्क करता है क्योंकि बिना अभ्यास के विद्या नष्ट हो जाती है–

''अनभ्यासा हता विद्या''

एक बार स्कूल का निरीक्षण करने एक इन्स्पेक्टर साहब आये। उन्होंने कक्षा के तीन मेधावी छात्रों के नाम पूछे और बोर्ड पर सवाल हल करने को दिए। एक-एक करके तीनों छात्रों को सवाल हल करने के लिए बुलाया। दो छात्र तो आये लेकिन तीसरे के स्थान पर पुनः पहला छात्र आया तो इंस्पेक्टर ने उसका कारण पूछा। छात्र ने कहा कि तीसरे नम्बर का छात्र पिक्चर देखने गया है, वह कह गया था कि जब तक मै नहीं आऊँ तब तक तुम मेरा काम देख लेना। जब शिक्षक ने इस पर कोई प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं की तो इन्सपेक्टर ने कहा, लगता है, तुम भी नये आये हो, तुम अपने छात्रों को भी नहीं पहचानते। शिक्षक ने कहा, आपने ठीक पहचाना। आज इंडिया और पाकिस्तान का मैच है। यहाँ का जो टीचर है वह मैच देखने गया है। दोस्ती के नाते मै उसकी जगह पढ़ाने आ गया हूँ।

यह है हमारी शिक्षा पद्धति की स्थिति। इंसपेक्टर प्राचार्य से शिकायत करता है और कहता है कि आप बहुत भाग्यशाली हैं क्योंकि जो असली निरीक्षक हैं वह भी आज शादी में गए हैं, यदि वह होते तो आपकी शामत आ जाती।

नीचे से ऊपर तक पूरी व्यवस्था ही तहस-नहस हो गई है। जिन संस्थाओं में इस तरह की कर्त्तव्यहीनता एवं दायित्वों के प्रति उदासीनता व्याप्त हैं, वह संस्था और देश कैसे विकास कर सकता हैं?

शिक्षा का उद्देश्य मात्र डिग्रियाँ प्राप्त करना या कोई उच्च पद प्राप्त कर लेना नहीं है। महात्मा गाँधी भी आप ही की तरह एक छात्र थे। सुभाषचन्द्र बोस ने भी आपकी ही तरह शिक्षा प्राप्त की थी। महारानी लक्ष्मीबाई भी एक छात्रा थी। ब्राह्मी और सुन्दरी ने भी अपने जीवन में अध्ययन किया था। छात्र जीवन बहुत महान, अमूल्य एवं पवित्र जीवन होता है। मनुष्य जीवन के निर्माण के लिए शिक्षा नींव का काम करती है। जिस प्रकार भवन निर्माण के लिए नींव की अत्यन्त आवश्यकता होती है, उसी प्रकार जीवन निर्माण के लिए शिक्षा की अत्यन्त आवश्यकता है। देश एवं समाज की उन्नति में यह छात्र-छात्रायें नींव के समान हैं। यदि इनके जीवन में शिक्षा प्राप्त नहीं हो सकी, नैतिक जीवन का विकास नहीं हो सका तो देश कभी उन्नति नहीं कर सकता है।

महारानी लक्ष्मीबाई ने सिर्फ पुस्तकीय ज्ञान ही प्राप्त नहीं किया था, अपितु उसके रोम-रोम में देश भक्ति समाई थी। उन्होंने देश के प्रति, समाज के प्रति अपने उत्तरदायित्व को समझा था। अपने राज्य की सुरक्षा का दायित्व समझ कर ही वह देश पर कुर्बान हो गई। आपको सुभद्राकुमारी चौहान की वह पंक्तियाँ याद होंगीं-

चमक उठी सन् सत्तावन में, वह तलवार पुरानी थी।
बुन्देले हरबोलों के मुँह, हमने सुनी कहानी थी॥
खूब लड़ी मर्दानी, वह तो झाँसी वाली रानी थी।

नारी को अबला, कायर या भीरू मानना उचित नहीं है। देश की अनेक नारियों ने समय आने पर देश पर अपना बलिदान किया है, देश हित के अनेक कार्य किए हैं। आज की छात्राओं को ऐसे प्रसंगों से सीख लेनी चाहिए।

शिक्षकों के भी कुछ दायित्व हैं। मात्र वेतन लेकर पाठ्यक्रम पूरा कराना ही उनका कर्त्तव्य नहीं है अपितु छात्र-छात्राओं में ऐसे संस्कार विकसित करना है जो परिवार, समाज एवं राष्ट्र का गौरव बढ़ाए। इसके लिए शिक्षक

का आचरण एवं रहन-सहन स्वयं संतुलित होना चाहिए। जिस देश के छात्र सदाचारी होंगे, नैतिकता एवं कर्त्तव्यों के प्रति जागरूक होंगे, उनकी शक्ति मिलकर देश को उन्नति के चरम शिखर पर ले जाती है। जो छात्र बुरी आदतों के शिकार होंगे, स्वार्थ के महलों एवं संकीर्णताओं की गलियों में गुजरते हैं, वे कभी उन्नति नहीं कर सकते हैं और उनका देश कभी महान् नहीं बन सकता है। इसलिए शिक्षकों का यह पुनीत कर्तव्य है कि छात्रों के व्यक्तित्व का चहुँमुखी विकास करने का प्रयत्न करें, अच्छे संस्कार पुनर्जीवित करने का प्रयत्न करें।

महात्मा गाँधी के जीवन की एक घटना है। स्कूल में परीक्षा के समय जब उनसे किसी शब्द की Spelling नहीं बनीं तो शिक्षक ने कहा कि पीछे वाले छात्र से पूछ लीजिए। लेकिन गाँधी जी ने शिक्षक की सलाह को स्वीकार नहीं किया। उन्होंनें कहा कि आप हमारे पालक है, शिक्षक हैं, जीवन निर्माता हैं, यदि आप ही इस प्रकार की सलाह देंगे तो हमारे भविष्य का क्या होगा? शिक्षक को गाँधी जी की इस बात से शर्मिन्दा होना पड़ा। बचपन के संस्कार व्यक्ति को कहाँ से कहाँ तक ले जाते हैं, यह बात इस प्रसंग से स्पष्ट होती है। माँ पुतलीबाई की सुनाई हुई छोटी-छोटी कहानियों ने महात्मा गाँधी के जीवन का निर्माण किया। सत्यवादी हरिश्चन्द्र एवं श्रवणकुमार के चरित्र को देखकर उनके जीवन की दिशा बदल गई। नैतिकता का ढिंढोरा न पीटते हुए, उन्होंने अपने जीवन को प्रयोगशाला बनाया और जो कहा, वह करके दिखाया।

आज आप अपने बच्चों के बचपन को किससे सजा रहे हैं? विदेशी चैनलों की भरमार ने केवल नाचते हुए नायक-नायिकाओं की अदाओं को दिन-रात हमारे सामने परोसा है। विदेशी संस्कृति से प्रभावित तमाम धारावाहिकों ने बाल मन पर किस तरह आक्रमण किया? कभी सोचा आपने? आज दादा-दादी, माँ-पिताजी एवं बच्चे तीनों पीढ़ियाँ एक साथ बैठकर उस संस्कृति को देखते हैं जिससे कि हमारा परिचय बहुत दूर तक नहीं है। जैसा हम देखेंगे, वैसी ही हमारी भावनाएँ बनेंगी, आचरण बनेगा।

आज प्रत्येक माँ-पिता यह कहते सुने जाते हैं कि बच्चे बहुत उद्दण्ड हो रहे हैं, अनुशासन नहीं है, नैतिक पतन हो रहा है, माँ-पिता की इज्जत नहीं करते हैं। लेकिन क्यों? क्या कभी सोचा आपने? पैदा होते ही बच्चों के

कान में कोई मंत्र, ईश्वर का नाम, महापुरूषों की कहानी न पढ़कर उनकी आँखों के सामने चलचित्र होते हैं। आँख खोलते हुए दूरदर्शन के परदे से सामना होता है, और उसी प्रकार भावनाओं से अनुप्राणित वह बालमन आपको या समाज को जो देता है, उसमें वह दोषी कहाँ है।

आज घरों में, परिवार एवं पाठशालाओं में नैतिक एवं सदाचार पर विशेष बल देना चाहिए। शिक्षक अपने छात्रों में महात्माओं के आदर्श देखना चाहता है। शिक्षक का जीवन जब आदर्श योग्य होगा, तब वह छात्रों को आदर्श योग्य बना पायेगा। उनका जीवन स्वयं नैतिकता एवं सदाचार से युक्त होना चाहिए। आज भी पाठशालाओं में, महाविद्यालयों में ऐसा देखा जाता है कि कोई छात्र कितना भी गिरा हुआ हो, गुण्डा हो, दादा हो, कितना ही चरित्रहीन हो, फिर भी वह कुछ शिक्षकों का बहुत सम्मान करता हैं, उनके सामने आते ही श्रद्धा से उसका सिर झुक जाता है, अपनी सारी उद्दण्डता भूल जाता है, क्यों? वह उस व्यक्ति का नहीं, व्यक्तित्व का सम्मान करता है। इसलिए कहा जाता है–

हिंसा उस अहिंसा की वन्दना करती है।
जो वाणी से पहले आचरण में उतरती है।।

उद्दण्ड छात्र भी समझता है कि अमुक शिक्षक विद्यार्थियों के प्रति कितने सजग हैं। सारे विद्यार्थी उनकी नजर में एक हैं। सबको समान रूप से शिक्षा देते हैं। आचरण में कोई दाग नहीं है, कलंक नहीं, किसी व्यसन के आदी नहीं। सात्विकता की पूजा हर व्यक्ति करता है। कितना भी क्रूर से क्रूर व्यक्ति हो, आपकी विनम्रता के आगे झुक जाता है और व्यसनी शिक्षक के आगे आते ही सिर उठाने लगता है। महापुरूषों का हमारे देश एवं समाज पर बहुत बड़ा ऋण है, क्योंकि–

अगर ये सत्य संयम हृदय में बीज न बोते।
यों ही संसार सागर में हम सभी खाते गोते।।
न पावन आत्मा होती न जीवित मंत्र ही होते।
कभी का देश मिट जाता जो ऐसे संत न होते।।

यही संत, समाज एवं देश के नागरिकों का मार्ग दर्शन करते हैं। इनके चरणों में सभी प्रकार के व्यक्ति आकर नतमस्तक होते हैं।

आजकल छात्रों में धूम्रपान आदि की आदतें अधिक पनप रही हैं, जिसके कारण फैफड़ों का रोग, गले का कैंसर आदि का शिकार होना पड़ता है। जब आपका स्वास्थ्य ही सही नहीं है तो किस प्रकार से आज आप अपनी शिक्षा को पूराकर व्यक्तित्व विकास की बात सोच पायेंगे?

शराब पीने वाले व्यक्ति शराब को नहीं पीते, शराब उनको पी जाती है। उनका घर, परिवार बिखर जाता है। शराब अन्दर ही अन्दर शरीर के अवयवों को निष्क्रिय कर देती है जिससे कि शरीर का ओज, बल एवं मनोबल गिरता जाता है। किसी कार्य को करने के योग्य नहीं रह जाते हैं। समाज बुरी नजरों से देखता है। परिवार की इज्जत मिट्टी में मिल जाती है। शराब पीने वाले के रक्त से उत्पन्न संतान को कैंसर हो सकता है। यह रक्त पीढ़ियों तक अपना असर दिखा सकता है। आप स्वयं सोचिये। आप शराब पीते हैं, उसका दुष्परिणाम आपकी दस पीढ़ियों पर पड़ता है। क्या आप इतनी खतरनाक वस्तु का सेवन पसंद करेंगे?

आजकल ड्रग्स का उपयोग भी छात्रों में बढ़ रहा है। ऊँचे घराने और पैसे वाले माँ-बाप की संतान इसकी अधिक शिकार है। स्कूल के छात्रावासों में रहने वाले छात्र इसका उपयोग अधिक करते हैं। जाने-अनजाने में वह इसका उपयोग शुरू कर देते हैं। लेकिन उसके बाद जब इसका जहर धीरे-धीरे शरीर में फैलने लगता है तो वह किसी काम के नहीं रह जाते। जिन्दगी नर्क बन जाती है। सपने चकनाचूर हो जाते हैं। माँ-पिता की आशाओं पर तुषारापात होता है, और जिंदगी धीरे-धीरे तबाह हो जाती है।

बच्चे यदि चाहें तो उनके घर में भी इसका उपयोग बंद हो सकता है। प्रत्येक घर सें एक या दो संतान होने से माँ-पिताजी बच्चों का कहना मान ही लेते हैं। यदि वह इस बात की जिद्द पकड़ ले तो उनके घर में कभी मांस-मदिरा का प्रवेश हो ही नहीं सकता है। बच्चे तरह-तरह की जिद्द करते हैं, लेकिन यदि अच्छी आदतों, अच्छे संस्कारों के लिए जिद्द करें तो वह घर स्वर्ग बन जाए। एक बालक ने जिद्द ठान ली कि यदि घर में शराब आयेगी, मांस आयेगा तो मैं घर में नहीं रहूँगा और न ही घर में पका खाना खाऊँगा। उसने उस घर की काया-पलट कर दी। यदि आप लोग चाहें तो संगठन के माध्यम से अपने घर, परिवार एवं शहर में क्रान्ति ला सकते हैं। इसके लिए अत्यन्त आवश्यकता है हमारी शिक्षा पद्धति में आमूल-चूल

परिवर्तन की। अंग्रेजी शासन की बनाई हुई शिक्षा पद्धति हमारे देश का कभी हित नहीं कर सकती है। इसी सन्दर्भ में एक और प्रसंग याद आता है-

एक कक्षा में शिक्षक राम का चरित्र पढ़ा रहे थे। निरीक्षक महोदय कक्षा में पहुँचे। उन्होंने एक छात्र को खड़ा किया। पूछा कि शिवजी का धनुष किसने तोड़ा है? बालक डर गया और बोला कि मैं रामचन्द्रजी की कसम खाता हूँ, मैने शिवजी का धनुष नहीं तोड़ा है। निरीक्षक ने शिक्षक से कहा कि आप तो कहते हैं कि हमारे छात्र बहुत मेधावी हैं, लेकिन इतनी सी बात का उत्तर नहीं दे पाये। शिक्षक ने कहा कि यह छात्र बहुत ऊधमी है, इसको जितना भी रोका जाय उतना ही उधम करता है, मैं ठीक से समझा दूँगा। अब यह कुछ नहीं तोड़ेगा। निरीक्षक जाकर प्रधानाध्यापक से शिकायत करते हैं कि आपके शिक्षक बहुत बेवकूफ हैं, इतनी सी बात का जवाब नहीं दे पाए। प्रधानाध्यापक प्रार्थना करते हैं, साहब! जो भी हरजाना होगा मैं दे दूँगा, लेकिन आप बात को यहीं समाप्त कर दीजिए। निरीक्षक सोचने लगा, कैसी व्यवस्था है? ऊपर से नीचे तक कोई इस प्रश्न का उत्तर नहीं दे पा रहा है। कमेटी वालों से जब शिकायत की कि आपका स्कूल कितना घटिया है, रामचन्द्र जी का प्रसंग पढ़ा रहे है और किसी को नहीं मालूम कि शिव जी का धनुष किसने तोड़ा है? मंत्री भी उसी लहजे में कहते हैं, साहब! स्कूल का फर्नीचर बहुत टूट रहा है, वह रिपेयर होने जाएगा, उसी के साथ शिव जी का धनुष भी भेज देंगे। वह भी जुड़ जायेगा, आप चिन्ता न करें।

इस प्रकार की शिक्षा पद्धति से देश किस दिशा में जाएगा? छात्र क्या ले पायेंगे और शिक्षक क्या देंगे? यह ज्वलंत प्रश्न है। शिक्षकों की अपने कार्य के प्रति जागरूकता अपेक्षित है, क्योंकि हमारी भारतीय संस्कृति में शिक्षकों का अपना आदर्श रहा है। जिस प्रकार सिर के बिना धड का, डोर के बिना पतंग का, जड़ के बिना वृक्ष का कोई महत्व नहीं है उसी प्रकार जीवन में गुरू के बिना जीवन की सार्थकता नहीं। जव गुरू का आशीष मिलता है और शिष्य का समर्पण होता है तभी उन्नति के सर्वोच्च शिखर की प्राप्ति होती है। गुरू के आर्शीवाद से जीवन से परिवर्तन होता है।

एक गुरूजी थे। काफी छात्र उनके पास आते थे। उनकी पत्नी ने देखा कि यह किन्हीं छात्रों को पढ़ाने में तो बहुत उत्कण्ठा एवं उत्साह दिखाते हैं

एवं किन्ही छात्रों को पढ़ाने में उतना उत्साह नहीं दिखाते हैं। एक छात्र को गुरूजी, बहुत अधिक प्यार करते थे। जब पत्नी ने गुरू से पूछा तो उन्होंने कहा कि इसका उत्तर समय आने पर मिल जायेगा। एक बार गुरूजी ने अपनी हथेली पर आम रखकर उस पर पट्टी बांध ली और फोड़ा होने का बहाना बनाकर असहनीय वेदना को व्यक्त किया। कई छात्र आए, सभी ने अपनी-अपनी तरह के उपाय बताए। एक छात्र आया तो उसने गुरू जी से पूछा कि वेदना से मुक्ति का क्या उपाय है? गुरू जी ने कहा कि अगर तू इसको चूसकर पूरा मवाद निकाल दे, तब मुझको दर्द से राहत मिल सकती है। वह छात्र गुरू के प्रति पूर्ण समर्पित था। उसने अपनी उन्नति की झलक गुरू के प्यार में देखी थी। गुरू क्या है? जो अंधकार से प्रकाश की ओर ले जाए, अज्ञान से ज्ञान की ओर ले जाए, गड्ढ़ों से सुरक्षित जगह ले जाए। छात्र ने अपनी विनयशीलता एवं समर्पण के कारण चूसना शुरू किया। वह तो आम था। गुरू जी ने पत्नी से कहा कि तुम्हें आज अपने प्रश्न का उत्तर मिल गया होगा। इसके मन में जरा भी घृणा ग्लानि नहीं है। सिर्फ मेरा दर्द दूर करने का भाव है। ऐसे छात्र पर मै बलिहारी हूँ। लगता है अपने जीवन का सर्वस्व इस पर न्यौछावर कर दूँ और उठकर उस छात्र को गले से लगा लिया। छात्र गुरू के पैरों में पड़कर उनसे विनय की याचना करने लगा।

यह है छात्र का अपने गुरू के प्रति श्रद्धा एवं समर्पण। जीवन में त्याग की अत्यन्त आवश्यकता है। आप जैसे-जैसे अपनी बुराईयों को, गलतियों को, कमियों को त्यागते चले जाएंगे, गुरू का प्रसाद/असीम अनुकम्पा/ज्ञान का प्रकाश आपके हृदय में भरता चला जाएगा। आपको हृदय में जगह खाली करने की आवश्यकता है। आप अपनी बुरी आदतों, घृणा, विद्वेष की भावनाओं को गुरू चरणों में समर्पित कीजिए। श्रद्धा एवं समर्पण से ज्ञान की ज्योति का प्रकाश आपको स्वयं प्रकाशित करने लगेगा। आपको अपने हृदय में ग्रहण करने के लिए स्थान तो बनाना पड़ेगा। यह तभी संभव है, जबकि आप भी गुरू के हृदय में श्रद्धा और समर्पण से स्थान बनायें। ऐसा जिस दिन हो जाएगा, हमारी प्राचीन गौरवशाली परम्परा को लौटाने में वक्त नहीं लगेगा।

''अहिंसा विश्वधर्म की जय''

卐 ———— 卐 ———— 卐

तनाव मुक्ति

सकल मानव मोद विधायिनि, मधुर भाषिणि सुन्दर रूपिणि।
गतमले द्वयलोक सुधारिणि, मम मुखे वस पाप विदारिणि॥

बन्धुओं! वर्तमान का जो परिवेश चल रहा है, भौतिकता की चकाचौंध में व्यक्ति अन्धा बना हुआ है। पाश्चात्य संस्कृति के प्रति आकर्षित व्यक्ति उसी साज-सामान को प्राप्त करने के लिए दिन-रात मेहनत कर रहा है, काला बाजारी कर रहा है, चोरी, डकैती कर रहा है। येन-केन-प्रकारेण वह समस्त भौतिक सम्पदाओं का अम्बार अपने घर में लगा देना चाहता है। लेकिन यह सब सम्पदायें तनाव के अतिरिक्त उसको कुछ नहीं देती हैं। इसके विपरीत इन भौतिक सम्पदाओं के बीच रहते हुए भी जो महापुरूष/संत जल में भिन्न कमल की तरह अपनी आत्मा का विकास करते हैं, मानवता के सच्चे पुजारी बनते हैं।

अमेरिका के पूर्व राष्ट्रपति लिंकन के जीवन पर जब हम दृष्टिपात करते हैं तो देखते हैं कि वह रोज चार से पाँच किलोमीटर की यात्रा अपने मित्र के पास जाने के लिए करते थे। उनके पास पढ़ने का साधन नहीं था, लेकिन दया, करूणा, वात्सल्य से ओतप्रोत हृदय था। कितनी भी विषमतायें जीवन में आयें, यह आपकी थिंकिंग/मानसिकता पर निर्भर करता है कि वह आपको कितना प्रभावित करती हैं। एक प्रसंग किसी के लिए तनावों का माध्यम बनता है, तो दूसरे के लिए हर्ष का कारण बनता है।

बापू के साथ एक घटना हुई। एक व्यक्ति के मन में जितनी गालियाँ आईं, उसने उन्हें दे ड़ाली। गाली देने वाला थक गया। जब थककर वह चुप हो गया तो बापू बोले, भाई! एक बात बताओ; कोई वस्तु यदि किसी को दो और वह नहीं ले तो वह वस्तु किसकी है? वह बोला, सीधा सा गणित है, जिसकी वस्तु उसके पास। बापू ने कहा कि ठीक इसी तरह मैंने तुम्हारी गालियाँ भी नहीं ली। गाली देने वाला अत्यन्त शर्मिन्दा होकर बापू के चरणों मे गिर पड़ा।

परन्तु आपकी स्थिति अलग है। आप तो एक अपशब्द सुनते हैं, एक कटु शब्द सुनते हैं, माता-पिता की तेज आवाज सुनते हैं तो तनाव/टेंशन में हो जाते हैं। आपका बैलेंस/संतुलन बिगड़ जाता है। जब मानसिक दुर्बलता आती है, संकल्प शक्ति जितनी कम होती है, विल पावर जितना कम होता है, उतनी ही तनावों में वृद्धि होती है। जब आपका विल पावर हाई होता है, संकल्पशक्ति दृढ़ होती है तो कितनी भी समस्यायें आयें, वह आपको वचलित नहीं कर सकतीं। समस्याओं के बीच में भी आनन्द की अनुभूति की जा सकती है। गुलाब का फूल काँटों में ही खिलता है।

जितने भी महापुरूष हुये, उनका जीवन भी बड़ी विषम परिस्थितियों में व्यतीत हुआ। महारानी लक्ष्मीबाई अपने पति की मृत्यु से तनावयुक्त होती तो अंग्रेजों का मुकाबला कभी नहीं कर सकती थी। भगतसिंह फाँसी के फन्दे पर चढ़ने के लिए जा रहा था। चेहरे पर सिकुड़न नहीं थी। मानसिकता उच्च एवं राष्ट्र प्रेम से ओतप्रोत थी। जो जिसके विषय में जितना सोचता है, उतना ही तनावों से ग्रसित होता है। विश्वशांति महायज्ञ, सिद्धचक्रमंडल विधान आदि जितनी भी धार्मिक क्रियायें है, इनका एक ही प्रमुख उद्देश्य है-तनावों से मुक्ति एवं शांति की प्राप्ति।

व्यक्ति प्रकृति के जितना निकट होगा, उतना तनावों से मुक्त होगा। ज्यों-ज्यों व्यक्ति का जीवन पाश्चात्य संस्कृति से प्रभावित होगा, त्यों-त्यों उसका जीवन बोझिल होता जायेगा। पहले लोगों के पास इतने साधन-सुविधायें नहीं थीं तो इतने टेंशन, तनाव, समस्यायें भी नहीं थी। प्रसन्नता एक बहुत बड़ा टॉनिक है। शारीरिक बल कुछ भी न हो लेकिन आपके पास प्रसन्नता का खजाना है, मनोबल है तो आपके पास बहुत कुछ है। प्रसन्नता नहीं है, मनोबल नहीं है, तो कितने ही ऐशों आराम से रहिये, आपको शांति नहीं मिल सकती। केवल मानसिकता एवं विचारों में परिवर्तन होने से तनावमुक्ति एवं शांति की प्राप्ति हो जाती है। जब जीवन की असारता का ज्ञान होता है तो व्यक्ति शांति की खोज करने लगता है।

अमेरिका में एक अरबपति थे-जॉन्स। सारे इलाज करा चुके थे। जब फायदा नही हुआ तो लोगों ने बताया डॉ० फैमिंग बहुत प्रसिद्ध हैं। उनसे बात करिये। उनके पास पहुँचते हैं और कहते हैं कि मुझे इलाज कराना है।

डॉक्टर जब उनसे बात करता है तो बड़ा अहंकार झलकता है। डॉक्टर ने मना कर दिया कि मै तुम्हारा इलाज नहीं कर पाऊँगा। दुबारा पहुँचते हैं। उसने कहा अभी तुम्हारा इलाज संभव नहीं है, तीन दिन बाद आइये। वह डॉक्टर अरबपतियों का भी अरबपति था। लेकिन उसे पैसे का मोह नहीं था। जॉन्स तीसरी बार पहुँचते हैं और फिर बड़ी विनम्रता से निवेदन करते है कि मुझे इलाज कराना है। अब विनम्रता थी, वाणी में करूणा थी, डॉक्टर ने देखा अब यह इलाज के योग्य है। डॉक्टर ने कहा, तुम्हें कुछ नहीं करना है, एक छोटा सा मकान तैयार कराना है, लेकिन किसी का सहारा नहीं लेना है। जिसने कभी एक ग्लास पानी भरकर नहीं पिया हो, सैकड़ो नौकर जिसके आगे-पीछे घूमते हों, उसके लिए छोटा सा मकान बनाना भी अत्यन्त कष्टमय था। जॉन्स ने फिर भी मकान तैयार किया और जब डॉक्टर के पास पहुँचे तो डॉक्टर ने चैकअप करके कहा, तुम्हे अब कोई बीमारी नहीं हैं।

मै आपको बताना चाह रहा हूँ कि वर्तमान में जीने वाला कभी तनावग्रस्त नहीं होता है। आज का किया हुआ कर्म ही कल के भाग्य के रूप में प्रस्तुत होगा। इसलिए वर्तमान के बारे में सोचे। इच्छायें जितनी जीवन में कम होंगी, संतोषवृत्ति जितनी जीवन मे आयेगी, उतना ही जीवन तनावों से मुक्त रहेगा। आप विकास अवश्य करें, लेकिन शारीरिक, मानसिक एवं भावनात्मक स्तर पर अपने जीवन को बोझिल न बनायें।

मदर टेरेसा ने सेवा भाव के कारण विश्व में अपना महत्वपूर्ण स्थान बनाया। सेवा बहुत बड़ी चीज है। इस वैज्ञानिक युग में धर्म की, पुराणों की, साइंस की बात कितनी ही की जाये, गले नहीं उतरती है। जब उसे मेडिकल साइंस के माध्यम से सिद्ध किया जाता है, तब आप उसे स्वीकार करते हैं। वैज्ञानिकों ने जब यह सिद्ध किया कि जल की एक बूँद में 36450 जीव होते हैं, तव आप जैन सिद्धान्त को सत्य मानते हैं। डॉक्टर आपको सलाह देते हैं कि पानी को छानकर पीजिये। भगवान महावीर ने बहुत पहले कहा कि पानी को छानकर पीजिये और दिन में भोजन करिये। आप प्रकृति के अनुकूल चलेंगे तो आपका रक्त, आपकी भावनायें अनुकूल होंगी, जीवन भी तनाव मुक्त रहेगा।

आप परिस्थितियों के साथ समझौता करने की कोशिश करें। आप तो सभी को अपने अनुकूल देखना चाहते हैं। पत्नी मेरे अनुकूल चले, पुत्र मेरे

अनुकूल चले। जब सभी आपके अनुकूल हो जायेंगे तो यह संसार, संसार नहीं स्वर्ग हो जायेगा। विषम परिस्थियों एवं वातावरण में प्रफुल्लित जो रह लेता है, समस्याओं के बीच में मुस्कराता रहता है, वह तनावमुक्त रहता है। पाश्चात्य संस्कृति से लोगों को ऊब होने लगी है। पाश्चात्य जीवन शैली, विलासी जीवन से तनाव एवं रोगों के अतिरिक्त कुछ नहीं मिलता। रोग एवं तनाव बढ़ते ही जाते हैं। सात्विक भोजन से दया, करूणा एवं संवेदनशीलता की भावना बढ़ती है। तामसिक भोजन से गलत प्रवृत्तियों एवं अनेक बीमारियों को स्थान मिलता है।

आपने कभी सोचा? आप शरीर को तो विश्राम देते हैं, लेकिन मन को विश्राम नहीं देते। मन की विश्रान्ति के लिए आवश्यक हैं, ध्यान करना, सद्कार्य करना, सत्साहित्य का पठन-पाठन करना। इनके माध्यम से आप हलकेपन की अनुभूति कर सकते हैं। अमेरिका के एक डॉक्टर आये थे। वह परमात्मा एवं प्रभुभक्ति के नाम से चिकित्सा करते थे। दिल्ली में भी इस तरह का एक अस्पताल खुला है, जिसका प्रभाव हमारी ग्रन्थियों पर पड़ता है। बच्चा जब माता-पिता को पूजा-पाठ करता हुआ देखता है तो उस पर भी उसका प्रभाव पड़ता है। उसके संस्कारों में अभिवृद्धि होती है।

कोई विकल्प आपके सामने आता है तो आप इतना सोचते हैं कि अपने को अशान्त बना लेते हैं। इस तनावमुक्ति के लिए प्रभुभक्ति का सहारा लीजिये। सत्साहित्य का सहारा लेकर अपने को व्यस्त रखिये। फ्री या फालतू रहेंगे तो कुछ न कुछ सोचेंगे जिससे मन अशान्त होगा। विषम परिस्थितियों में भी शान्त रहने का प्रयास कीजिये, क्योंकि जितना समय चिन्ता में देंगे वह कूड़े में चला जायेगा और जितना समय चिन्तन में देंगे वह मन के कमल को खिलाने का काम आयेगा। अतः हमें अपने जीवन में तनाव मुक्त रहते हुये प्रभु भक्ति की ओर अपने कदम धीरे-धीरें बढ़ाना चाहिये, जिससे कि हमें भी एक दिन स्वस्वरूप को प्राप्त हो सकें।

"अहिंसा विश्व धर्म की जय"

卐 ———— 卐 ———— 卐

श्रुत संवर्द्धन संस्थान : एक परिचय

परमपूज्य, आचार्यरत्न मुनि श्री ज्ञानसागरजी महाराज की प्रेरणा से जिनवाणी के उपासकों को साहित्य संरक्षण एवं सृजन हेतु मूलभूत सुविधाएँ उपलब्ध कराने के उद्देश्य से श्रुत संवर्द्धन संस्थान की 1996 में मेरठ में स्थापना की गई। वस्तुतः इस विचार ने तो 1991 में ही जन्म ले लिया था। सुविधा सम्पन्न ग्रंथालय के विकास, संस्थान के मुखपत्र **सराक सोपान** के प्रकाशन, शोध परियोजनाओं के क्रियान्वयन आदि की योजनायें तो गतिमान हैं ही, साथ ही अपने-अपने स्थान पर रहकर विविध रूपों में साहित्य की सेवा करने वाले विद्वानों को सम्मानित करने की योजना को भी मूर्त रूप दिया गया।

जिनवाणी के उपासकों के प्रति असीम वात्सल्य भाव से अनुप्राणित होकर पूज्य आचार्यश्री ने श्रुत संवर्द्धन संस्थान के कार्यकर्ताओं को प्रशान्त मूर्ति आचार्य श्री शांतिसागरजी 'छाणी' की आचार्य परम्परा के नामों से पुरस्कार स्थापित करने की प्रेरणा दी। इस श्रृंखला में स्थापित पुरस्कारों का विवरण निम्नवत् है-

1. **आचार्य शांतिसागर (छाणी) स्मृति श्रुत संवर्द्धन पुरस्कार-** यह पुरस्कार जैन आगम साहित्य के पारम्परिक अध्येता/टीकाकार विद्वान को आगमिक ज्ञान के संरक्षण में उसके योगदान के आधार पर प्रदान किया जाता है।

2. **आचार्य सूर्यसागर स्मृति श्रुत संवर्द्धन पुरस्कार-** यह पुरस्कार प्रवचन निष्णात एवं जिनवाणी की प्रभावना करने वाले विद्वान को प्रदान किया जाता है।

3. **आचार्य विमलसागर (भिण्ड) स्मृति श्रुत संवर्द्धन पुरस्कार-** यह पुरस्कार जैन पत्रकारिता के क्षेत्र में उत्कृष्ट कार्य करने वाले जैन पत्रकार को दिया जाता है।

4. **आचार्य सुमतिसागर स्मृति श्रुत संवर्द्धन पुरस्कार-** यह पुस्कार जैन विद्याओं के शोध/अनुसंधान के क्षेत्र में समग्र रूप से उत्कृष्ट कार्य हेतु प्रदान किया जाता है।

5. **मुनि वर्द्धमानसागर स्मृति श्रुत संवर्द्धन पुरस्कार–** यह पुरस्कार जैन धर्म/दर्शन के किसी भी क्षेत्र में लिखी हुई मौलिक, शोधपूर्ण, अप्रकाशित कृति पर प्रदान किया जाता है।

उक्त सभी पुरस्कारों हेतु चयनित व्यक्ति (महिला/पुरुष) को रु० 31000/– नगद, शाल, श्रीफल एवं प्रशस्ति से सम्मानित किया जाता है। दिगम्बर जैनाचार्यों की यशस्वी परम्परा की स्मृति में स्थापित इन श्रुत संवर्द्धन पुरस्कारों द्वारा 2003 तक 36 विद्वानों को समारोह पूर्वक नगद राशि, शाल श्रीफल एवं प्रशस्ति से सम्मानित किया जा चुका है।

सराकोद्धारक, राष्ट्र संत, आचार्य श्री ज्ञानसागरजी महाराज द्वारा जैन संस्कृति के संरक्षण में दिये जा रहे अप्रतिम योगदान के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करने हेतु श्रुत संवर्द्धन संस्थान, मेरठ ने वर्ष 2000 में **'उपाध्याय ज्ञानसागर श्रुत संवर्द्धन पुरस्कार'** की स्थापना की। इस वार्षिक पुरस्कार के अन्तर्गत जैन साहित्य, संस्कृति अथवा समाज के संरक्षण/विकास में उत्कृष्ट योगदान देने वाले विशिष्ट व्यक्ति/संस्था को रु० 1,00,000/– की नकद राशि, प्रशस्ति एवं स्मृति चिन्ह से सम्मानित किया जाता है। पुरस्कार का निर्णय संस्था द्वारा मनोनीत विशिष्ट विद्वानों/ समाजसेवियों के निर्णायक मंडल द्वारा किया जाता है। वर्ष 2000 का पुरस्कार जैन साहित्य प्रकाशन के क्षेत्र में सुविख्यात संस्था **भारतीय ज्ञानपीठ**, नई दिल्ली को और वर्ष 2001 का पुरस्कार राजर्षि **डॉ० वीरेन्द्र हेगड़े** को समर्पित किया जा चुका है। वर्ष 2002 के पुरस्कार हेतु चयन प्रक्रिया गतिमान है।

सराक पुरस्कार की स्थापना मूलतः अ० भा० दि० जैन सराक ट्रस्ट के अन्तर्गत की गई थी। इसके अन्तर्गत सराक क्षेत्र में उत्कृष्ट समाजिक कार्य तथा सराकोत्थान हेतु जनजाग्रति करने वाले व्यक्ति/संस्था को रु० 25,000/– की नगद राशि, शाल, श्रीफल, प्रशस्ति युक्त सराक पुरस्कार से सम्मानित किया जाता है। वर्ष 1999 में **सराकोत्थान उपसमिति–गाजियाबाद** तथा वर्ष 2000 में मेरठ के **श्री प्रेमचन्द जैन 'तेल वालों'**, वर्ष 2001 हेतु **श्री कमलकुमार जैन, साड़म (बोकारो)** वर्ष 2002 हेतु श्री विनय कुमार जैन, दिल्ली तथा वर्ष 2003 हेतु जैनम फाऊन्डेशन, दिल्ली को पुरस्कृत किया जा चुका है। वर्ष 2001 से यह पुरस्कार भी श्रुत संवर्द्धन संस्थान द्वारा संचालित है।

प्राच्य श्रमण भारती

यह संस्थान की सहयोगी संस्था है। प्राचीन जैन ग्रन्थों की पांडुलिपियों के संकलन, संरक्षण, सम्पादन एवं प्रकाशन, लोकोपयोगी साहित्य को सर्व सुलभ कराने एवं आगम ग्रन्थों के प्रकाशन की क्षीण होती परम्परा को पुनर्जीवित करने के भाव से प्राच्य श्रमण भारती की स्थापना के विचार का जन्म तो 1991 में गया में ही हो गया था किन्तु इसकी विधिवत् स्थापना 1996 में की गई। जिनवाणी के प्रति अनन्य अनुराग रखने वाले **सराकोद्धारक संत, परम पूज्य, आचार्य श्री ज्ञानसागरजी महाराज** की प्रेरणा से स्थापित इस संस्था द्वारा से अब तक लगभग 100 ग्रन्थों का प्रकाशन किया जा चुका है। अनेक ग्रन्थों के अनेक संस्करण भी प्रकाशित हो चुके हैं। आचार्य शान्तिसागर छाणी ग्रन्थमाला, बुढ़ाना द्वारा प्रकाशित ग्रन्थों के महत्व एवं आवश्यकता को दृष्टिगत करते हुए इसे भी सहयोजित कर लिया गया है।

इसके प्रकाशनों में यदि **'प्रमेयकमल मार्तण्ड परिशीलन'** एवं **'न्याय कुमुदचन्द्र परिशीलन'** जैसे न्याय के ग्रन्थ सम्मिलित हैं तो **'षट्खंडागम की शास्त्रीय भूमिका'** जैसे शोधपूर्ण ग्रन्थ भी हैं। **'मेरी जीवन गाथा', 'धर्मफल सिद्धान्त', 'जैनधर्म', 'जैन शासन', तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा'** उनके लेखकों की कालजयी कृतियाँ हैं।

प्राणेषु त्यक्तमोहः सन् यतते यो लुलायवत्।
जेतुं सर्वापदस्तस्य हताशाः प्रतियान्ति ताः॥

भैंसे के समान हर एक संकट का सामना करने के लिए जो जी तोड़कर श्रम करने को तैयार है, उसके सामने विघ्न-बाधा आयेंगी पर निराश होकर अपना सा मुँह लेकर वापिस चली जायेंगी।

स्वविपक्षे विपत्तीनां सज्जितां महतीं चमूम्।
दृष्ट्वापि यस्य नाधैर्यं ततो विभ्यति ताः स्वयम्॥

आपत्ति की एक समस्त सेना को अपने विरूद्ध सुसज्जित खड़ी देखकर भी जिसका मन बैठ नहीं जाता, बाधाओं को उसके पास आने में स्वयं बाधा होती है।

आचार्य श्री ज्ञानसागर जी की आरती

ज्ञानसागर की, गुण आगर की, शुभ मंगल दीप सजायके,
हम आज उतारें आरतियाँ।
शांतिलाल श्री अशर्फीबाई के, गर्भ विषै गुरु आए,
मुरैना नगर में जन्म लिया है, सब जन मंगल गाए,
गुरु जी सब जन मंगल गाए।
ना रागी की, ना द्वेषी की, शुभ मंगल दीप सजायके,
हम आज उतारें आरतियाँ।
ज्ञानसागर की, गुण आगर की, शुभ मंगल दीप सजायके,
हम आज उतारें आरतियाँ।
व्रत-उपवास व्रतों के धारी, आतम ब्रह्म विहारी,
संयम धारा शिव पथ चलकर, शिथिलाचार निवारी,
गुरु जी शिथिलाचार निवारी।
गृह त्यागी की, वैरागी की, शुभ मंगल दीप सजायके,
हम आज उतारें आरतियाँ।
ज्ञानसागर की, गुण आगर की, शुभ मंगल दीप सजायके,
हम आज उतारें आरतियाँ।
आज गुरु के दर्शन करके, अलौकिक सुख पाया,
भक्ति-भाव से आरती करके, फूला नहीं समाया,
गुरु जी फूला नही समाया।
ऐसे गुरुवर की, ऐसे ऋषिवर की, करूँ आरती बारंबार हो,
हम आज उतारें आरतियाँ।
ज्ञानसागर की, गुण आगर की, शुभ मंगल दीप सजायके,
हम आज उतारें आरतियाँ।
जबलपुर नगर में आन पधारे, ज्ञान की गंगा बहाए,
आतम ध्यान लगाकर गुरु जी, मोह रिपु को हटाए,
गुरु जी मोह रिपु को हटाए।
ऐसे साधु की, ऐसे तपस्वी की, करूँ आरती बारंबार हो,
हम आज उतारें आरतियाँ।
ज्ञानसागर की, गुण आगर की, शुभ मंगल दीप सजायके,
हम आज उतारें आरतियाँ।

करने धर्म का प्रचार

करने धर्म का प्रचार, सभी जीवों का उद्धार
ज्ञान गगरी ले आए, ज्ञानसागर मुनिवर॥

हम भक्तों का पुण्योदय आया,
दर्शन ऐसे मुनिवर का पाया,
छोड़ा झूठा जग जंजाल, तोड़ा सारा मायाजाल,
सोनागिर जी में दीक्षा धारी है मुनिवर॥
करने धर्म का प्रचार, सभी जीवों का उद्धार।
ज्ञान गगरी ले आए, ज्ञानसागर मुनिवर॥

हाथों में लिए हुए पिच्छी कमण्डल,
चलते हैं नंगे पैरों पैदल ही मुनिवर,
कर दो हमरा भी उद्धार, हम भी आए तेरे द्वार,
तारो-तारो जी हमको ज्ञानसागर मुनिवर॥
करने धर्म का प्रचार, सभी जीवों का उद्धार।
ज्ञान गगरी ले आए, ज्ञानसागर मुनिवर॥

सुमतिसागर जी गुरुवर तुम्हारे,
मिले ज्ञानसागर से शिष्य जिन्हें न्यारे,
षष्ठ पट्टाचार्य महान, करें सब भक्तों का कल्याण,
ज्ञान गंगा बहाने आए हैं मुनिवर॥
करने धर्म का प्रचार, सभी जीवों का उद्धार।
ज्ञान गगरी ले आए, ज्ञानसागर मुनिवर॥